श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

मायावादकी जीवनी
या
वैष्णव–विजय

मूल लेखक

ॐ विष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

अनुवादक एवं सम्पादक
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति (रजि.)
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

मायावादकी जीवनी
या
वैष्णव–विजय

गौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय
दशमाधस्तनवर श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी

ॐ विष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी
महाराज द्वारा विरचित

एवं

तदीय अनुगृहीत
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज
द्वारा अनूदित एवं सम्पादित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति (रजि.)
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा

❑ **प्रकाशक—**

शुभानन्द ब्रह्मचारी (भागवतभूषण)

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

❑ **प्रथम संस्करण—**

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव
गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथि
२५ फरवरी १९९७

❑ **प्राप्तिस्थान—**

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो-नवद्वीप, नदिया (प० बं०)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ०प्र०) दूरभाष : ४०९४५३
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प० बं०)
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ० प्र०) दूरभाष : ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ० प्र०)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, यमुनापार, मथुरा (उ० प्र०)
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ० प्र०)
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
९. श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता-४
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, अरविन्द लेन, जिला-कूचबिहार
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, रान्दियाहाट, जिला-बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, दार्जिलिङ्ग (प० बं०)
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़ मेदिनीपुर (प० बं०)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला-वर्द्धमान (प० बं०)
१६. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो० वासुगाँव, जिला—कोकड़ाझार (आसाम)
१७. श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, तुरा, वेस्ट गोरा हिल्स, (मेघालय)
१८. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)
१९. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ, माथाभाङ्गा (कूचबिहार)
२०. श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, चैतन्य एवेन्यु, दुर्गापुर (प० बं०)

❑ **मुद्रक—**अनुभा प्रिन्टर्स, मथुरा।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

प्रबन्ध–सूचना

विद्योत्साही और कृतविद्य व्यक्तियोंके द्वारा पुनः पुनः अनुरोध किये जाने पर भी 'मायावादकी जीवनी' ग्रन्थके रूपमें प्रकाश करनेका सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि कलिकाल अत्यन्त प्रबल है। इसमें ईश्वर विरोधी नास्तिक्य विचारधारा और सर्वोपरि आसुरिक शिक्षाके प्रभावकी अत्यन्त वृद्धि हो जानेसे देशकी गतिविधि और गवेषणा–क्षेत्र इतने अधिक परिमाणमें निम्नगामी हो रहे हैं कि उसे भाषामें व्यक्त करना सम्भव नहीं है। शास्त्र–कर्ता–शिरोमणि भगवत्–अवतार श्रीवेदव्यासजीने श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें कलियुगकी अवस्थाके सम्बन्धमें जैसा वर्णन किया है, उससे पता चलता है कि सत्यके प्रचारमें नाना–प्रकारकी विघ्न–बाधाएँ उपस्थित होंगी—उन्होंने आजसे पाँच छह हजार वर्ष पहले ही ऐसा भविष्यवाणीके रूपमें लिपिबद्ध कर रखा है। श्रीव्यासदेवकी भविष्यवाणीको हम आज प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। प्रारंभिक अवस्थासे ही इस प्रबन्धको प्रकाशित करनेमें जैसी नाना–प्रकारकी विघ्न–बाधाएँ आईं—मैं पाठकवर्गको उसका किञ्चित् आभास देनेके लिए नीचे संक्षेपमें प्रबन्ध–सूचनाके माध्यमसे इसे व्यक्त कर रहा हूँ—

सन् १९१५ ई॰ में मैंने श्रीचैतन्यमहाप्रभुके जन्मस्थान श्रीधाम मायापुरमें जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीका दर्शन किया तथा उनके श्रीमुखविगलित हरिकथा श्रवणका सुयोग पाया। हरिकथा–श्रवणकी प्रथम भूमिकामें मायावादके विरुद्ध बहुत कुछ सुननेका सुयोग प्राप्त हुआ। पश्चात् सन् १९१९ ई॰ से जगद्गुरु**ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके** श्रीचरणोंके आनुगत्यमें सम्पूर्णरूपसे साधन–भजन करनेकी इच्छासे उनके द्वारा दीक्षित होकर स्थायी रूपसे श्रीचैतन्य मठ—व्रजपत्तनमें निवास करने लगा। धीरे–धीरे श्रीगुरुदेवके समीप धर्मतत्त्व और शास्त्र–सिद्धान्तके विषयमें शिक्षा ग्रहण करने लगा। कथाप्रसंगमें वे बार–बार कहते थे—"जब तक इस पृथ्वीपर मायावाद प्रचलित रहेगा, तब तक शुद्धभक्तिके पथमें विभिन्न प्रकारकी विघ्न–बाधाएँ पैदा होती रहेंगी, इसलिए श्रीशंकराचार्यके द्वारा

प्रचारित अद्वैतवाद या मायावादको जड़के सहित उखाड़ फेंकना होगा।" उन्होंने अपने इस विचारको अपने पत्र पत्रिकाओं, प्रबन्धों, निबन्धों, अनुभाष्यों एवं विवृत्ति आदिमें सर्वत्र ही स्पष्टरूपसे प्रकाशित किया है।

श्रीलप्रभुपादकी यह शिक्षा मेरे हृदयमें दृढ़तापूर्वक बद्धमूल हो गई। मैंने श्रीलप्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेका संकल्प ग्रहण कर लिया। इस संकल्पको पूर्ण करनेके लिए मैंने वेदान्त दर्शनके दस-बारह विभिन्न भाष्यकारों द्वारा रचित भाष्यग्रन्थोंका संग्रह किया। कुछ दिनोंतक इनका गम्भीररूपसे अध्ययन किया, तत्पश्चात् मैंने Cuttack Ravanshaw College के एक विद्वत्सभामें शंकर-दर्शनके सम्बन्धमें भाषण दिया। मेरे भाषणका सारमर्म 'दैनिक नदिया प्रकाश' पत्रिकामें कुछ-कुछ प्रकाशित हुआ। मैंने मूलतः श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित नामभजन-शिक्षाका अवलम्बन करते हुए ही ब्रह्मसूत्रका विचार प्रदर्शन किया है। **आचार्य शंकरने ब्रह्मसूत्रके स्वरचित भाष्यमें अपने जिन मौलिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है, वे वेदान्त दर्शनके मूल सिद्धान्तोंके सम्पूर्ण विरुद्ध हैं। ब्रह्म निराकार, निर्विशेष और निर्गुणस्वरूप नहीं है। क्योंकि ब्रह्मसूत्रके लगभग पाँच सौ पचास सूत्रोंमें कहीं भी उक्त तीनों शब्दोंका उल्लेख नहीं है। ब्रह्म निर्विशेष नहीं है, निराकार नहीं है, निःशक्तिक नहीं है तथा निर्गुण भी नहीं है।** ब्रह्म यदि निर्गुण होते तो उनमें दया गुण कभी भी नहीं रह सकता। यही नास्तिक या आसुरिक विचारधाराका मूल उपादान है। वेदव्यासने स्वरचित वेदान्तसूत्रमें उक्त तीनों शब्दोंका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। आचार्य शंकरने उपरोक्त नास्तिकता और आसुरिक विचारपूर्ण तीनों शब्दोंको कहीं दूसरी जगहसे उद्धारकर ब्रह्मसूत्रके कन्धे पर रखनेकी व्यर्थ चेष्टा की है। इसलिए अद्वैतवाद या मायावादका ब्रह्म यथार्थमें ब्रह्मसूत्रमें वर्णित शुद्ध ब्रह्म नहीं है। वह शून्यकी भाँति मिथ्या कल्पनामात्र है। इससे पाठकगण इस ग्रन्थका पाठकर भलीभाँति अवगत हो सकेंगे।

'ब्रह्म' कहनेसे 'शब्द-ब्रह्म' का बोध होता है। यह शब्द-ब्रह्म ही श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा प्रचारित श्रीनाम-ब्रह्म है। जो लोग नाम-ब्रह्मका अनुसन्धान नहीं करते अथवा नाम-तत्त्वको नहीं जानते, उनका विशुद्धरूपमें नामभजन नहीं हो सकता। इसीलिए मैं सन् १९४० ई॰ से श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर श्रीमन्महाप्रभुके नामप्रेमधर्मको ही वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय बताकर सर्वत्र प्रचार कर रहा हूँ। भगवत्-इच्छा होनेपर वेदान्तसूत्रका शब्दवाद-तत्त्वमूलक नामपूर्ण भाष्य प्रकाश करनेकी इच्छा है।

श्रीचैतन्य मठ मायापुरमें रहते समय श्रीगुरुपादपद्मके कृपा–आशीर्वादसे उपरोक्त मठके परिचालक सेवकोंमें प्रधान–सेवकके रूपमें (Manager) कटहल वृक्षके नीचे वाले आफिस (Office) में बैठा था। उसी समय (लगभग १९३४–१९३५ ई॰ में) दो व्यक्ति मेरे समीप पहुँचे। उन्होंने मुझसे निवेदन किया कि आप वेदान्तके पण्डित हैं, हमलोग गौड़ीय मिशनके मुखपत्र साप्ताहिक 'गौड़ीय' का एक वार्षिक विशेषांक प्रकाश करने जा रहे हैं, आप उस विशेषांकके लिए 'मायावाद' के सम्बन्धमें एक प्रबन्ध दें। मैंने तत्क्षण उनका निवेदन स्वीकारकर कहा—"बहुत अच्छा, मैं एक प्रबन्ध दूँगा।" मैं उन दोनों व्यक्तियोंका नामोल्लेखकर अपना वक्तव्य कलुषित नहीं करना चाहता हूँ, फिर भी उनका नामोल्लेख नहीं करनेसे सत्यको छिपानेका दोष लगेगा, इसलिए इंगितके द्वारा उनका परिचय दे रहा हूँ। उनमें एक 'विद्याभूषण' उपाधिधारी व्यक्ति हैं और दूसरे 'विद्याविनोद'के नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्याविनोद महाशय कुछ महीनोंके बाद मेरे समीप आकर मेरे उस प्रबन्ध को ले गये। वार्षिक विशेषांक भी प्रकाशित हुआ, किन्तु मेरा वह प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हुआ। मैंने विद्याविनोदसे पूछा—"विशेषांकमें मेरा प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हुआ है, ऐसा क्यों?" उन्होंने उत्तर दिया—"वह प्रबन्ध बहुत लम्बा है, वार्षिक विशेषांकमें स्थानाभावके कारण वह नहीं दिया जा सका। उसे छोटी पुस्तिका (Pamphlet) के रूपमें प्रकाशित करनेकी इच्छा है।" मैंने कहा—"क्या श्रील प्रभुपादने उस प्रबन्धको देखा है?" विद्याविनोदने उत्तर दिया—"मैंने स्वयं ही उन्हें पढ़कर सुनाया है। वे इसे सुनकर बड़े प्रसन्न हुए।" मेरा प्रबन्ध विद्याविनोदके ही निकट रह गया।

१ जनवरी, १९३७ ई॰ में हमारे परमाराध्य श्रीगुरुदेवने अप्रकट लीलामें प्रवेश किया। तत्पश्चात् गौड़ीय मिशनमें नाना प्रकारकी गड़बड़ियाँ उपस्थित हुईं। तीन–चार वर्ष उसीमें बीत गये। इसके भीतर मिशनके बहुतसे प्रयोजनीय कागज–पत्र, दलील, प्रबन्ध आदि छिन्न–भिन्न हो गये। कौन कहाँ ले गया, इसका पता न चला। मैं वाद–विवादसे हटकर सन् १९३९ ई॰के जून महीनेमें चैतन्य मठसे चला आया। सन् १९४० ई॰में मैंने कलकत्ता स्थित ३३/२ बोसपाड़ा लेन, बागबाजारमें एक मकान किराये पर लेकर वैशाख महीनेकी अक्षय तृतीयाके दिन वहाँपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की। तदनन्तर सन् १९४१ ई॰ के भाद्र महीनेकी पूर्णिमाको मैंने

श्रीचैतन्य महाप्रभुके संन्यासक्षेत्र कटवामें श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत त्रिदण्डि यति पूज्यपाद भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजसे संन्यास ग्रहण किया। श्रीधाम नवद्वीप-स्थित अपने मठमें लौटकर वहाँसे विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करने लगा।

सन् १९४२ ई॰ के अक्टूबर-नवम्बर महीनेमें वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत नवद्वीपमण्डलकी नैर्ऋत्यसीमामें चाँपाहाटी-समुद्रगढ़में स्थित श्रीगौर-गदाधर मठमें एक महीनेतक कार्तिक व्रतका पालन कर रहा था। उसी समय श्रीलप्रभुपादकी शिष्या श्रीयुता उषालता देवीके घरपर बहुतसे कागज-पत्र मिले। सौभाग्यवश मेरे 'मायावादकी जीवनी'की पाण्डुलिपि भी मिल गई। मैं उस खोई हुई पाण्डुलिपिको प्राप्तकर अत्यन्त आनन्दित और उल्लसित हुआ।

१९४७ ई॰ में मैंने चुचुड़ा शहरमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठकी स्थापना की। क्रमशः वहाँसे निकटवर्ती श्रीरामपुर नामक शहरमें माननीय वकील श्रीयुत फनीभूषण चक्रवर्ती, शास्त्री एम.ए., बी.एल. महोदयकी संस्कृत पाठशालामें सात दिन तक पाठ किया। उस समय उनके घरमें एक विराट पुस्तकालय देखा। उसमें बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंको देखा। उन ग्रन्थोंमें से 'श्रीलंकावतार सूत्रम्' नामक ग्रन्थके प्रति विशेषरूपसे मेरी दृष्टि आकर्षित हुई। मैंने उसे पढ़नेके लिए वकील महोदयसे कुछ दिनोंके लिए माँग लिया। उस पुस्तकमें एक स्थलपर ऐसा वर्णन मिला—"रावण वायुयानके द्वारा सर्वोच्च पर्वतशृंगके उपर अद्वैतवाद आलोचनाके लिए तथागत-बुद्धके समीप जाया करता था।" मायावादकी जीवनी-ग्रन्थमें पृष्ठ १४ पर लंकावतारसूत्रसे संगृहीत प्रमाणको मैंने उद्धृत किया है। उसीसे मैंने त्रेतायुगके अद्वैतवादियोंका इतिहास संग्रह किया। पाठकवर्ग इसको पाठ करनेपर स्वयं उसका परिचय पा सकेंगे। इन घटनाओंका उल्लेख विद्याविनोदको दी हुई 'मायावादकी जीवनाी'की पाण्डुलिपिमें नहीं था। वे पीछेसे जोड़े गए हैं।

सन् १९४६ ई॰ में काशी महानगरीमें ऊर्जाव्रत पालन करते समय मैं बुद्धगया गया था। वहाँ पर मैंने देखा कि प्राचीन कालसे ही बुद्धगयाके मन्दिरोंकी सारी व्यवस्था अद्वैतवादी सम्प्रदायके एक विशिष्ट शंकराचार्य महन्तके द्वारा परिचालित होती है। वे ही बुद्धगयाकी सम्पत्तिके अधिकारी हैं। ऐसा देखकर मुझे बहुत ही कौतूहल हुआ। मैं शंकराचार्य महन्त महाराजजीके दोमंजिले घरपर मिला। मैंने बड़ी नम्रतासे उनसे

पूछा—"**बुद्धगया तो बौद्धोंका स्थान है, आप शंकर–सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध आचार्य होकर भी बौद्धमठोंके अधिपति कैसे हुए? क्या शंकर–सम्प्रदाय भी बौद्ध सम्प्रदायके अन्तर्गत है?**" इसपर वे असंतुष्ट होकर बोले—"आचार्य शंकर बौद्ध क्यों हैं? वैष्णवगण हमलोगोंके विरुद्ध व्यर्थ ही ऐसी कूटोक्तियाँ करते हैं।**क्या आपने 'ललितविस्तार' ग्रन्थको देखा है।**" मैंने उत्तर दिया—"नहीं देखा है।" तब उन्होंने कहा—"आप हमारे पण्डित महाशयसे आलोचना करें।" उन्होंने अपने सभा पण्डितको वहीं बुला लिया। सभा पण्डितने आलोचनाके प्रसंगमें ललितविस्तार नामक ग्रन्थको मुझे दिखाया। मैंने उसी समय उस ग्रन्थसे बहुतसे प्रमाणोंको अपने नोटबुकमें उद्धृत कर लिया। इस ग्रन्थके पृष्ठ १३ में उन प्रमाणोंको उद्धृत किया गया है। यह प्रसंग भी विद्याविनोदको दी गयी पाण्डुलिपिमें नहीं था। पीछेसे इसे सन्निविष्ट किया गया है।

कुछ वर्ष व्यतीत होनेपर सन् १९४९ ई॰ में समितिके मुखपत्रके रूपमें मासिक 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' प्रकाश करने का प्रस्ताव आया। तदनन्तर उक्त पत्रिकाके सम्पादक पूज्यपाद नित्यलीला प्रविष्ट श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराजके विशेष उत्साहसे सन् १९५३ई॰ में श्रीपत्रिकाके पंचम वर्षकी प्रथम संख्यासे मायावादकी जीवनी क्रमशः प्रकाशित होने लगी। वह पञ्चम वर्षकी ग्यारह संख्याओंमें तथा छठे वर्षकी नौ संख्याओंमें प्रकाशित हुई। यही उस ग्रन्थका प्रथम–संस्करण है।

इस प्रबन्धको ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित करनेके लिए बहुतसे शिक्षित व्यक्तियोंके द्वारा पुनः पुनः अनुरोध किये जाने पर भी नाना प्रकारकी विघ्न–बाधाओंके कारण अब तक उसे कार्यके रूपमें परिणत नहीं किया जा सका। उसका मूल कारण अनुसन्धान करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान्‌की इच्छा ही प्रबल है; क्योंकि वेदव्यासके द्वारा वर्णित श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें की हुई भविष्यवाणीके अनुसार वर्तमान समयमें कलियुग प्रारम्भ हो चुका है और अभी भी कलिका सम्पूर्ण प्रभाव प्रकाशित नहीं हुआ है, ऐसा मैं समझता हूँ। विशेषकर कलिकालको प्रबल बनानेकी इच्छा स्वयं भगवान्‌की ही है। आचार, विचार और शिक्षामें मनुष्यका कितना अधोपतन हो सकता है, इसका उदाहरण विश्वमें रहना उचित है। इस इच्छाको पूर्ण करनेके लिए भगवान्‌ने अपने सेवक शिव या शम्भु को ब्राह्मण परिवारमें जन्म ग्रहण करवाकर सारे विश्वमें मायावादका प्रचार

करवाया है। इस विषयमें इस ग्रन्थके पृष्ठ ३७ में प्रमाण दिये गये हैं—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि! कलौ ब्राह्मण मूर्त्तिना।।
* * * * *
स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।।
* * * * *
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात्।।

मनुष्यको नास्तिक या आसुरिक भावापन्न होनेके लिए उनके मस्तिष्कके लिए कुछ आहारकी आवश्यकता होती है। इसलिए शंकराचार्यने सारे भारतवर्षमें वैदिक शास्त्रोंकी सहायता लेकर आसुरिक धर्म और नास्तिकताकी स्थापना की है। यह विशेषरूपसे लक्ष्य करनेका विषय है कि स्वयं शिव या रुद्र संहारके देवता हैं। ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं तथा शिव संहारकर्त्ता हैं—यह ऐतिह्य हमारे देशमें सर्वत्र प्रचलित है। रुद्रने कलिको और भी प्रबल बनानेके लिए जगत् मिथ्या है, विश्व सत्य नहीं है—ऐसा प्रचारकर जगत्-ध्वंसमूलक शिक्षाका ही प्रचार किया है। उन्होंने ज्ञानकी आड़में अज्ञानरूप तमोधर्मका ही प्रबल रूपसे प्रचार किया है। साधारण लोग इसे न समझकर इससे मोहित होकर अधोपतित हो रहे हैं।

यह विशेष लक्ष्य करनेकी बात है कि ब्रह्मसूत्र वेदान्त दर्शनमें जो शब्द, सिद्धान्त या बातें ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलतीं, शंकराचार्यने बलपूर्वक उन्हींका स्थापन किया है, मैंने पहले ही ऐसा लिखा है। विशेषतः आचार्य शंकरका ज्ञानवाद मौलिक तत्त्वके रूपमें गृहीत होनेपर भी **इस 'ज्ञान' शब्दका उल्लेख व्यासरचित ब्रह्मसूत्रमें कहीं भी नहीं है।** इसलिए ब्रह्मवादको किसी प्रकार ज्ञानवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह केवल मेरा ही वक्तव्य नहीं, स्वयं शांडिल्य ऋषिने शांडिल्यसूत्रके द्वितीय आह्निक (अध्याय) के अन्तिम छब्बीसवें सूत्रमें ब्रह्मकाण्डको भक्तिकाण्ड बतलाया है—

''ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात्।'' अर्थात् ब्रह्मकाण्ड भक्तिके लिए ही है, ज्ञानके लिए नहीं। इसके द्वारा ज्ञानकी असारता प्रदर्शित हुई है।

विद्वत् वरेण्य आचार्य स्वप्नेश्वरने उपरोक्त सूत्रका भाष्य किया है,

यहाँ वह विशेषरूपसे द्रष्टव्य है—"ज्ञानाप्राधान्ये ज्ञानकाण्डमित्युत्तरकाण्ड प्रसिद्धिर्न स्यादिति मन्वानं प्रत्युच्यते। भक्त्यर्थं ब्रह्मकाण्डे श्रुयते न ज्ञानार्थं** तस्माज् ज्ञानकाण्डमिति भ्रमः।" भाष्यकार आचार्य स्वप्नेश्वरने स्वयं शांडिल्यसूत्रके अन्तमें अपना परिचय प्रदान किया है। उससे प्रमाणित होता है कि ५००-६०० वर्ष पूर्व गौड़मण्डलके राजसेनापतिके पुत्ररूपमें इनका जन्म हुआ था। राजसेनापति ब्राह्मण थे। उनके परिवारमें उच्चकोटिके बड़े-बड़े विद्वान थे। ये आधुनिक भाष्यकार नहीं हैं।

शांडिल्य ऋषिके परिचय से भारतीय हिन्दू समाजके सभी शास्त्रज्ञ अवगत हैं, तथापि यहाँपर उनका कुछ परिचय देना आवश्यक समझता हूँ। श्रीवेदव्यासने स्वरचित स्कन्द पुराणके बहुतसे स्थानोंपर शांडिल्य ऋषिके नामका उल्लेख किया है। स्कन्द पुराणके विष्णुखण्डके श्रीभागवत माहात्म्यके प्रथम अध्यायमें ऐसा कहा गया है—

इत्युक्तो विष्णुरातस्तु नन्दादीनां पुरोहितम्।
शांडिल्यमाजुहावाशु वज्र–सन्देहनुत्तये ।।१६।।
अथोटजं विहायाशु शांडिल्यः समुपागतः।
पूजितो बज्रनाभेन निषसादासनोत्तमे।।१७।।

अर्थात् वज्रनाभके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर उनका सन्देह दूर करनेके लिए राजा विष्णुरात (महाराज परीक्षित) ने नन्दगोप आदिके पुरोहित शांडिल्य ऋषिको बड़े आदरसे बुलवाया। राजाके द्वारा बुलाये जानेपर शांडिल्य ऋषि अपनी पर्णकुटीसे चलकर शीघ्र ही महाराजके पास उपस्थित हुए। अनन्तर वज्रनाभजीने उनकी पूजाकर उन्हें बैठनेके लिए उत्तम आसन दिया। उसपर शांडिल्य ऋषि सुखपूर्वक बैठे।

इसके अतिरिक्त वेदव्यासके गुरु श्रीनारद ऋषिने भी बड़े गौरवपूर्वक शांडिल्य ऋषिका नामोल्लेख किया है। नारदसूत्रके ८३वें सूत्रमें शांडिल्य ऋषिके नामका उल्लेख देखा जाता है। ये सूत्रसमूह साधारणतः 'नारदभक्तिसूत्र'के नामसे प्रसिद्ध हैं। उसमें ऐसा लिखा गया है—"ॐ इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमार-व्यास-शुक-**शांडिल्य**-गर्गा विष्णु-कौण्डिन्य- शेषोद्धवारुणि-बलि-हनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्यः।।८३।।"

—(वाराणसीसे १९०८ शकाब्दमें प्रकाशित प्राचीन संस्करण)

अर्थात् सनक आदि चारों कुमार, वेदव्यास, शुकदेव, शांडिल्य, विष्णु (स्मृतिलेखक ऋषि), कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणी, बलि, हनुमान और

विभीषण आदि भक्ति-तत्त्वाचार्योंके द्वारा भक्तिमार्ग दिखलाया गया है। वे मेरे इस सूत्रग्रन्थको देखकर मेरा उपहास न करें (दैन्योक्ति)। यहाँपर श्रीनारदजीने ब्रह्मसूत्रके रचयिता वेदव्यास तथा शांडिल्य ऋषिको भक्तिशास्त्रका प्रणेता बतलाकर बड़े गौरवसे उनके नामका उल्लेख किया है। मैं पहले ही यह बतला चुका हूँ कि शांडिल्य ऋषिने भी ब्रह्मसूत्रको भक्तिशास्त्र ही माना है। नारद ऋषिने भी व्याससूत्र अर्थात् ब्रह्मसूत्रको भक्ति ग्रन्थ ही स्वीकार किया है। ऐसी स्थितिमें ब्रह्मसूत्रके स्वरचित भाष्यमें अथवा अन्यत्र ज्ञानवादकी स्थापना करनेके लिए निराकार निर्विशेष, निर्गुण, निःशक्तिक ब्रह्मका जो निरूपण किया है, उसका किसी प्रकारसे भी अनुमोदन नहीं किया जा सकता। अन्तमें मेरा यह निवेदन है कि जो लोग कलिके कवल से मुक्ति प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें कभी भी शंकर-भाष्यका पठन तथा पाठन नहीं करना चाहिए। मैंने प्रबन्धके अन्तमें शंकराचार्यके मायावादके पठन-पाठनका जो निषेध किया है, उसका कारण यह है कि श्रीचैतन्य चरितामृत मध्य-लीला षष्ठ परिच्छेदमें श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीजीने ऐसा लिखा है—

जीवेर निस्तार लागि' सूत्र कैल व्यास।
मायावादि-भाष्य सुनिले हय सर्वनाश।।१६९।।

अर्थात् जीवोंके उद्धारके लिए वेदव्यास ऋषिने ब्रह्मसूत्रकी रचना की है, किन्तु श्रीशंकराचार्य द्वारा लिखित मायावादी भाष्य सुननेसे जीवोंका सर्वनाश होता है। इसलिए मैंने परम मुक्त महापुरुषोंकी शिक्षा और उनके उपदेशोंका अवलम्बन करके ही मायावादसे पूर्ण ग्रन्थोंके पठन-पाठनका निषेध किया है। इसके अतिरिक्त श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरकी शिक्षा भी हमारे लिए विशेष अनुसरणीय है—

से दुयेर मध्ये विषयी तबु भाल।
मायावादी-संग नाहिमागि कोनकाल।।
मायावाद दोष जा'र हृदय पशिल।
कुतर्के हृदय ता'र वज्रसम भेल।।
भक्तिर स्वरूप** आर **'विषय' 'आश्रय'।
मायावादी 'अनित्य' बलिया सब कय।।
धिक तार कृष्ण-श्रवण-कीर्त्तन।
कृष्ण अङ्गे वज्र हाने ताहार स्तवन।।

मायावाद सम भक्ति–प्रतिकूल नाइ।
अतएव मायावादी संग नाहि चाइ।।

अर्थात् विषय सुखोंमें आसक्त मूढ़ और मायावादी—इन दो प्रकारके लोगोंको भक्ति नहीं होती। वे भक्तिशून्य होते हैं। इन दोनोंमें अपेक्षाकृत विषयीलोग कुछ अच्छे हैं, क्योंकि कभी साधु–सङ्ग होनेसे इन लोगोंको भक्ति हो सकती है, किन्तु मायावादियोंका सङ्ग कदापि नहीं करना चाहिए; क्योंकि जिनके हृदयमें मायावादका दोष प्रवेशकर जाता है, उनका हृदय सदा कुतर्कसे भरा रहनेके कारण वज्रके समान कठोर हो जाता है। वैसे कठोर हृदयमें भक्तिका बीज पनप नहीं पाता। ये लोग भक्तिके स्वरूपको तथा भक्तिके विषय और आश्रयको अनित्य मानते हैं। ये लोग श्रीकृष्णका जो अर्चन–पूजन, श्रवण, कीर्तन तथा स्तव करते हैं, उसके द्वारा श्रीकृष्णके अङ्गोंमें वज्र मारनेके समान चोट पहुँचती है। धिक्कार है उनके ऐसे भजन–साधनको। भक्तिके लिए मायावाद सर्वाधिक प्रतिकूल है। इसलिए मैं मायावादियोंका सङ्ग नहीं चाहता।

पारमार्थिक जीवनमें प्रवेश करनेके लिए महापुरुषों (महाजनों) की निर्दोष शिक्षाओंका अवलम्बन करना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना शुद्ध पारमार्थिक जीवन होना असम्भव है। श्रीवेदव्यासजीने जीवोंके सर्वोत्तम कल्याणके लिए ब्रह्मसूत्रकी रचना की है। ब्रह्मसूत्रका दूसरा नाम भक्तिसूत्र है। मैंने इसे नारद ऋषि और शांडिल्य ऋषिके ग्रन्थोंसे पहले ही प्रदर्शित किया है। ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शनका प्रतिपाद्य विषय भक्ति अथवा नामभजन है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा किसी दूसरी विचारधाराका प्रतिपादन करना महाजनों द्वारा अनुमोदित नहीं होगा। सभी भारतीय शास्त्रकारोंने भक्तिकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन किया है। यहाँ तक कि उसे परामुक्तिका एकमात्र उपाय निरूपित किया है। अन्यान्य पथ नाना प्रकारके दोषोंसे पूर्ण, युक्तिहीन तथा प्रमाणहीन हैं। विशेषकर गम्भीरभावसे विचार करनेपर देखा जाता है कि मायावाद या अद्वैतवादमें **'सिद्ध–साधन–दोष'** है, साथ ही **'बाधितानुवृत्ति'** दोषसे भी वह दूषित है। जीव यदि सत्ताहीन ब्रह्म ही है, तो उसे ब्रह्म होनेके लिए पुनः साधन करनेकी आवश्यकता क्या है? यदि वह सब समय यह कहता फिरता है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ, तो उसके लिए साधन करनेकी क्या आवश्यकता है, इसीको सिद्ध–साधन दोष कहते हैं अर्थात् जो वस्तु है, उसके लिए साधनकी क्या आवश्यकता है, अद्वैतवाद इस दोषसे दूषित

है। सीधे-सरलरूपसे यह कहा जा सकता है कि मेरे पास जो वस्तु है, उसे प्राप्त करनेके लिए कौन मूर्ख प्रयत्न करेगा? 'बाधितानुवृत्ति' की व्याख्या मैंने मूल ग्रन्थमें की है। उपसंहारके प्रसङ्गमें ७७ पृष्ठपर "[ख] निर्वाणरूप फल-निरोध" प्रसङ्ग विशेषरूपसे द्रष्टव्य है।

वर्तमान सन् १९६८ ई॰ के जनवरी-फरवरी महीनेसे श्रीमान् नवयोगेन्द्र ब्रह्मचारी बड़े प्रयत्नसे 'मायावादकी जीवनी' को ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, मैं उन्हें धन्यवाद ज्ञापन कर रहा हूँ। इस ग्रन्थके मुद्रण विषयमें श्रीभावभक्ति ब्रह्मचारी तथा धीरकृष्ण ब्रह्मचारीको उनके विशेष परिश्रमके लिए धन्यवाद दे रहा हूँ। **त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने** सब प्रकारसे परिश्रमकर प्रथम संस्करण अर्थात् 'श्रीगौड़ीय पत्रिका'में प्रकाशित कतिपय अंशोंकी भाषामें संशोधन, परिवर्त्तनके द्वारा इसे सुगम तथा बोधगम्य बनाया है। अस्वस्थ होनेपर भी मैंने भी कुछ संशोधन किये हैं। विशेषतः ग्रन्थके नामके साथ **'वैष्णव-विजय'** नामको युक्त किया है। क्योंकि ऐसा नहीं करनेसे सत्य आच्छादित रह जाता है।**उपसंहार अध्यायमें भी कुछ नवीन विषयोंको लिपिबद्ध करनेको बाध्य हुआ हूँ।** इन कार्योंमें उक्त महाराजजीने बहुत सहायता की है। अतः मैं उनका विशेषरूपसे कृतज्ञ हूँ। मैं यहाँपर पाठकोंसे विशेष अनुरोध करता हूँ, वे उपसंहारके (क) से (झ) तकके विषयोंका विशेषरूपसे अनुशीलन करेंगे।

मैं इस ग्रन्थके सूचीपत्र और प्रबन्ध सूचना नामक इस भूमिकाके प्रति सबकी दृष्टिको विशेषरूपसे आकर्षण करना चाहता हूँ। भ्रम संशोधन(Proof Correction) भलीभाँति न होनेके कारण बहुत-सी मुद्रणजनित अशुद्धियाँ रह गयी हैं, उनके अत्यन्त साधारण होनेके कारण पृथक्‌रूपमें भ्रमसंशोधन-पत्र नहीं दिया गया है। सहृदय पाठक उसे सहज ही समझ लेंगे।

अक्षय-तृतीया, मंगलवार
१७ मधुसूदन, ४८२ गौराब्द
१७ वैशाख, १३१५ बंगाब्द
ई॰ ३०/४/१९६८

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

प्रस्तावना

श्रीगौड़ीय सम्प्रदायैकरक्षक, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं उसके अन्तर्गत भारतव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता आचार्य, मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव परमहंसकुलचूड़ामणि ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा रचित 'मायावादकी जीवनी या वैष्णव विजय' नामक ग्रन्थका हिन्दी-संस्करण पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ। मेरे पूज्य सतीर्थ श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान आचार्य परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज तथा त्रिविक्रम महाराजके पुनः पुनः अनुरोध किये जाने पर भी मेरी अस्वस्थता एवं अन्यान्य कारणोंसे यह अमूल्य ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हो पाया था। समितिके हिन्दी मुखपत्र 'श्रीभागवत पत्रिका'के प्रथम वर्षके ग्यारह अंकोंमें तथा द्वितीय वर्षके प्रथम छह अंकोंमें धारावाहिक रूपमें यह प्रबन्ध छप चुका है। वही इस ग्रन्थका प्रथम संस्करण है। बंगला भाषामें अस्मदीय परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने १९६८ में कुछ संशोधन व संवर्धनके साथ इसे प्रकाशित करवाया था। उसीके अनुरूप श्रीभागवत पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्धोंमें कुछ संशोधन एवं परिवर्द्धनकर इसे ग्रन्थाकारमें प्रकाशित किया जा रहा है।

परमाराध्यतम श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका आविर्भाव २४ जनवरी, सन् १८९८ ई० में (बंगला १३०४, १२ माघ, सोमवार) कृष्ण तृतीया तिथिको पूर्वी बंगालके बारिसाल जिलेके अन्तर्गत बानारीपाड़ा ग्राममें एक शिक्षित संभ्रान्त एवं मर्यादासम्पन्न सुप्रतिष्ठित गुह ठाकुरता वंशमें हुआ था। पिताका नाम परमभागवत श्रीशरत्चन्द्र गुह ठाकुर तथा माताका नाम श्रीमती भुवनमोहिनी देवी था। इनके बाल्यकालका नाम श्रीविनोदविहारी था। बचपनसे ही ये कुशाग्र बुद्धि, विद्यानुरागी, आदर्श चरित्रवान, दयालु समाजसंगठक एवं धार्मिक रुचिसम्पन्न थे। छात्रजीवनमें ही इन्होंने बंगलाभाषामें एक मासिक पत्रिकाकी स्थापना की थी, जिसमें इनकी सुन्दर-सुन्दर कविताएँ एवं गम्भीर लेख प्रकाशित होते थे। सन् १९१५ ई० में श्रीधामनवद्वीप मायापुरमें इन्होंने जगद्गुरु नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादका दर्शन किया और

उनकी श्रीमुख विगलित हरिकथाका श्रवणकर ये अत्यन्त प्रभावित हुए। उसी समय श्रीलप्रभुपादने अनुग्रहकर इनको श्रीहरिनाम प्रदान किया।

श्रीलप्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथाके प्रभावसे कोलेजकी उच्चतम नास्तिक्यपूर्ण शिक्षाके प्रति वितश्रद्ध होकर सन् १९१९ ई॰ में माता-पिता, आत्मीय स्वजन, घर-बार सबकुछ छोड़कर श्रीधाममायापुरमें श्रीलप्रभुपादके चरणोंमें चले आये। वहीं पर श्रीगौरजन्मोत्सवके फाल्गुन पूर्णिमाके दिन श्रीलप्रभुपादने इनको दीक्षा-संस्कार प्रदान किया। तदनन्तर श्रीलप्रभुपादजीने इनकी विश्रंभ सेवा तथा स्वाभाविक वैष्णवोचित गुणोंको लक्ष्यकर इनको दैनिक 'नदिया प्रकाश' और मासिक 'श्रीगौड़ीय'में प्रबन्ध देनेके लिए निर्देश दिया। इस ग्रन्थकी भूमिका 'प्रबन्ध-सूचना'में ग्रन्थकारने अपने जीवन चरित्रका कुछ अंश स्वयं ही आत्मकथाके रूपमें लिखा है।

१९३७ ई॰ में श्रीलप्रभुपादकी अप्रकटलीलाके पश्चात् सन् १९४० ई॰ में इन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें प्रचार करना आरम्भ किया। इसके लिए इन्होंने समितिके दो मुखपत्र, श्रीगौड़ीय पत्रिका (बंगला मासिक) एवं श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी मासिक)की स्थापना की। इन्होंने लगभग ३० (तीस) सुयोग्य प्रमुख शिष्योंको त्रिदण्ड संन्यास प्रदानकर सम्प्रदायकी संन्यासधाराको पुनः प्रचलित किया। मुद्रणयन्त्र स्थापनकर सत्-सम्प्रदायके बहुतसे लुप्त होते जा रहे दुर्लभ ग्रन्थोंको प्रकाशित किया, सम्प्रदायविरोधी कुसिद्धान्तों और तर्कोंका अपने प्रबल अकाट्य युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा खण्डनकर सम्प्रदायकी अमूल्य सेवा की; 'मायावादकी जीवनी या वैष्णव विजय' और 'अचिन्त्यभेदाभेद' नामक दो मौलिक ग्रन्थोंकी रचनाकर अर्वाचीन केवल-अद्वैतवाद या मायावाद, सहजिया आदि भक्तिविरुद्ध कुमतोंका खण्डनकर अपने गुरुदेव एवं सम्प्रदायका गौरव बढ़ाया है। कुछ ही दिनोंमें इन्होंने सम्पूर्ण भारतमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन प्रचारकेन्द्रोंकी स्थापनकर सर्वत्र ही श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्धभक्तिका प्रचार-प्रसार किया है। इनके द्वारा रचित श्रीप्रभुपादकी आरती, श्रीश्रीराधाकृष्णयुगलकी मंगलाराति, श्रीतुलसी आरती आज सर्वत्र ही आरती और तुलसी परिक्रमाके रूपमें गायी जाती है। वे ६ अक्टूबर, १९६८ ई॰ रविवार शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें नित्यलीलामें प्रवेश कर गये।

प्रस्तुत 'मायावादकी जीवनी या वैष्णव विजय' ग्रन्थका पठन-पाठन

भक्तियोगके साधकोंके लिए नितान्त आवश्यक है। शुद्धभक्तिके साधकोंके लिए भक्तिके अनुकूल विषयोंको ग्रहण तथा भक्तिके प्रतिकूल विषयोंका वर्जन करना नितान्त आवश्यक है। श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित मायावाद या अद्वैतवाद शुद्धभक्तिका सर्वाधिक प्रतिकूल है। अतएव उसका वर्जन भी आवश्यक है। यह ग्रन्थ भक्ति-प्रतिकूलके वर्जनमें सहायक होनेके कारण भक्तिके लिए अनुकूल अनुशीलनका एक अङ्ग है।

इस ग्रन्थमें अकाट्य युक्तियों और प्रबल शास्त्रीय प्रमाणोंका अवलम्बनकर निम्नलिखित सुसिद्धान्तोंकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गई है—श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवाद या मायावाद अवैदिक, काल्पनिक एवं मिथ्या है। वैदिक ब्रह्मज्ञान अथवा ब्रह्मतत्त्व श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित केवलाद्वैतवाद या मायावादसे सर्वथा भिन्न है। वैदिक ब्रह्म सच्चिदानन्द भगवद्विग्रहकी अंगकान्ति है। सच्चिदानन्द भगवान्‌के केवल चित्‌शक्ति विशिष्ट आंशिक प्रकाशको ब्रह्म कहते हैं। इसलिए गीतामें भगवान श्रीकृष्णने—"ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्" के द्वारा अपनेको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा बतलाया है। वह गुणरहित तत्त्व नहीं है। श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा कहा गया है—"ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते"। किन्तु शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित मत अवैदिक एवं अशास्त्रीय है। क्योंकि वह सत् भी नहीं है तथा असत् भी नहीं है। वह वाणीसे अतीत है—"सदसत् अनिर्वचनीयत्वात्"। जगत सत्यसंकल्प भगवानकी शक्तिसे प्रकटित होनेके कारण मिथ्या नहीं है, बल्कि नश्वर है। जीव ही ब्रह्म नहीं है। वह भगवानका विभिन्नांश होनेके कारण नित्य भगवत्-दास है। वह किसी भी स्थितिमें स्वयं ब्रह्म नहीं हो सकता।

श्रीव्यासदेव द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्रके लगभग पाँचसौ पचास सूत्रोंमें कहीं भी निःशक्तिक, निर्विशेष, निराकार आदि शब्दोंका उल्लेख नहीं है। फिर भी आचार्य शंकरने ब्रह्मसूत्रके स्वरचित भाष्यमें बलपूर्वक इन शब्दोंको घुसेड़कर अपने अवैदिक मतकी स्थापना करनेकी चेष्टा की है। मायावादका यही प्रधान लक्षण है।

श्रीशंकराचार्य परमभक्त महादेव श्रीशंकरके अवतार हैं। उन्होंने भक्ति और भक्तोंके पोषण एवं असुरोंके संहारके लिए भगवत्-आज्ञासे इस अवैदिक मतका प्रचार किया है।

ईशभ्रान्ति और ईशवैमुख्य मायावादकी जड़ हैं। मायाके गर्भसे जिस

ज्ञानका बोध होता है, उसे मायावाद कहते हैं। श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित केवलाद्वैतवाद या मायावाद एवं गौतमबुद्ध द्वारा प्रवर्तित शून्यवाद—दोनोंमें कुछ विशेष अन्तर नहीं है। इसलिए मनीषियोंने शंकराचार्यको बौद्ध बतलाया है; क्योंकि दोनोंके मतानुसार जगत मिथ्या है। दोनों ही मतोंमें ब्रह्मको सदसत्-विलक्षण अनिर्वचनीय-तत्त्व बतलाया गया है अर्थात् शून्यसे ही जगत प्रकट हुआ है तथा अन्तमें शून्य ही रहेगा। अतएव परतत्त्व अर्थात् ब्रह्म निराकार, निर्विशेष एवं निर्गुण है। दोनोंके मतोंमें मुक्ति ही मुख्य प्रयोजन है। शंकरमतमें निर्विशेष ब्रह्मकी अनुभूतिरूप 'ब्रह्मज्ञान' और बुद्धदेवकी 'प्रज्ञा'का तात्पर्य एक ही है।

श्रीशंकराचार्यने अपने द्वारा प्रचारित मतको बौद्धवाद न कहकर केवलाद्वैतवाद या मायावाद इसलिए कहा क्योंकि ऐसा करनेके लिए उनके प्रति भगवानकी विशेष आज्ञा थी।

इस ग्रन्थमें पुष्ट प्रमाणोंके आधारपर यह सिद्ध किया गया है कि श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण, स्कन्दपुराणोंमें उल्लिखित विष्णु-बुद्ध एवं आधुनिक गौतम-बुद्ध एक नहीं हैं। प्रथम बुद्ध भगवानके अवतार हैं। उनका आविर्भाव कीकट प्रदेश—गयामें हुआ था। उनके पिताका नाम अञ्जन या अजिन है। श्रीमद्भागवतमें उनको अजिनसुत कहा गया है। ये निराकारवादी निर्विशेषवादी या नास्तिक नहीं थे। शास्त्रोंमें इनके नास्तिक होनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इन्होंने केवल यज्ञोंमें पशुओंकी बलि देनेका निषेध किया था। उन्होंने अहिंसाको परमधर्म बतलाया। वे दयाकी मूर्ति थे। शास्त्रोंका मूल तात्पर्य न समझनेके कारण ही अज्ञानी लोग यज्ञोंमें पशुओंकी बलि देते हैं। इसके विपरीत गौतमबुद्ध नेपालके कपिलवस्तुके अन्तर्गत लुम्बनि ग्राममें पैदा हुए थे। उनके पिताका नाम शुद्धोधन तथा माताका नाम मायादेवी था। उन्होंने विष्णु बुद्धके आविर्भाव स्थान गयामें बोध (ज्ञान) प्राप्त किया था। अतः उसे बुद्धगया भी कहते हैं। विष्णु बुद्धका आविर्भाव कलिके प्रारम्भमें लगभग ३५०० वर्ष पूर्व माना जाता है। किन्तु शाक्यसिंह गौतमबुद्धका जन्म आजसे लगभग २१९६ वर्ष पूर्व निर्धारित किया गया है। अतः दोनोंके जन्मस्थल, माता-पिता, जन्मकाल और विचार अलग-अलग हैं। शंकाराचार्यजीने जानबूझकर यह भ्रान्ति पैदा की है। बौद्धोंके प्रामाणिक अमरकोष ग्रन्थमें विष्णु बुद्ध और शाक्यसिंह बुद्धको अलग-अलग बतलाया गया है। फिर भी साधारण लोग

नामकी समानताके कारण दोनोंको एक ही मानते हैं। गौतम बुद्धके द्वारा प्रवर्तित शून्यवाद सम्पूर्ण नास्तिक मत है। उनके अनुसार वेद प्रामाणिक नहीं हैं और भगवान नहीं हैं। इसलिए उनके द्वारा प्रवर्तित शून्यवाद भी अवैदिक और नास्तिक मत है। इसी प्रकार आचार्यशंकर द्वारा प्रवर्तित केवलाद्वैतवाद भी प्रकारान्तर रूपसे शून्यवादका ही दूसरा रूप है। ग्रन्थकारने इसे शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके आधार पर प्रमाणित किया है। पाठकगण इस ग्रन्थका अनुशीलन करनेपर स्वयं ही इसका अनुभव कर सकते हैं।

ग्रन्थकारने चारों युगोंके प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंके जीवन चरित्रपर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्टरूपसे दिखलाया है कि सत्ययुगके आरम्भमें ब्रह्माके मानसपुत्र चतुःसन बाल्यकालसे ज्ञानयोगी थे। ज्ञानयोगमें ब्रह्मको निर्विशेष, निराकार माने जानेके कारण वह शुद्धभक्तिके प्रतिकूल है, परन्तु परमभगवद्भक्त ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भगवानने हंसावतारके रूपमें भक्तिका उपदेश देकर इन्हें परमभागवत बना दिया। श्रीमद्भागवत द्वितीय स्कन्धके सप्तम अध्यायमें इसका वर्णन मिलता है। सतयुगमें ही वास्कलि नामक असुर विद्वान एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी था। इनके गुरुका नाम बाध्वऋषि था। वे भी अद्वैतवादी थे। इनके पिताका नाम अनुहात था। वे हिरण्यकशिपुके पुत्र थे। हिरण्यकशिपु भी प्रसिद्ध अद्वैतवादी आचार्य थे। हिरण्यकशिपुकी स्त्री कयाधु जम्भासुरकी कन्या थी। इस प्रकार गुरु, माता-पिता आदिके अनुसार वास्कल या वास्कलि भी असुर थे। भगवान वामनदेवने इसका वधकर उद्धार किया था।

भगवान बड़े दयालु हैं। निरपेक्ष सरल हृदयवाले कतिपय ऋषि-मुनियोंने भगवत्-अवतारोंके द्वारा संशोधित होकर मायावादको त्यागकर अन्तमें भगवद्भक्तिका आश्रय लिया है। किन्तु, मायावादका आश्रय करनेवाले असुरगणके कठिन हृदयवाले और भक्ति-विरोधी होनेके कारण भगवत्-अवतारोंने इनका वधकर उद्धार किया है। त्रेतायुगमें ब्रह्मर्षि वशिष्ठ भी पहले ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे। उनके द्वारा रचित योग-वाशिष्ठ रामायण ही उसका साक्षी है। परन्तु भगवान श्रीरामचन्द्रकी कृपासे वे भगवत्-भक्त हुए थे।

त्रेतायुगमें दशानन रावण भी वैदिक ज्ञान सम्पन्न घोर केवलाद्वैतवादी या मायावादी था। पुलस्त्य ऋषिके वंशमें पैदा होनेके कारण तथा उसकी

माताके राक्षसराज मयदानवकी पुत्री होनेके कारण उसे अर्द्धऋषि तथा अर्द्धराक्षस कहा जा सकता है। रावण वायुयानके द्वारा किसी पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले तथागत बुद्धके निकट शिक्षा ग्रहण करने जाता था। इन सब तथ्योंको ग्रन्थकारने लंकावतारसूत्र नामक बौद्ध ग्रन्थसे संग्रह किया है। रावण निःशक्तिक एवं निर्विशेष तत्त्वका उपासक था। वह परम ब्रह्म श्रीरामचन्द्रजीकी शक्ति श्रीसीतादेवीका अपहरणकर निःशक्तिक और निर्गुण तत्त्वकी स्थापना करना चाहता था। ब्रह्मको निराकार निर्विशेष स्थापन करना ही अद्वैतवादियोंका मूल मंत्र होता है। किन्तु वह सच्चिदानन्दविग्रह परब्रह्म श्रीरामके द्वारा मारा गया।

द्वापरयुगमें श्रीवेदव्यासके पुत्र श्रीशुकदेवगोस्वामी भी पहले ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे। श्रीमद्भागवतमें इस तथ्यको उन्होंने स्वयं ही सुस्पष्टरूपमें व्यक्त किया है। किन्तु शक्त्यावेशावतार श्रीव्यासदेवकी कृपासे वे परम रसिक, भावुक तथा प्रेमीभक्त हो गये। बाद में वे श्रीमद्भागवत जैसे तत्त्व और रसपूर्ण शास्त्रके अद्वितीय वक्ता तथा वैष्णव सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य हुए।

कलियुगमें भी स्वयं भगवान श्रीचैतन्यमहाप्रभुने तत्कालीन मायावादी श्रीसार्वभौमभट्टाचार्य और साठ हजार मायावादी संन्यासियोंके गुरु काशीवासी श्रीप्रकाशानंद सरस्वतीको शास्त्रार्थमें परास्तकर उन दोनोंको वैष्णव सम्प्रदायमें दीक्षितकर परमवैष्णव बना दिया। श्रीचैतन्यचरितामृत एवं इतिहास इसके साक्षी हैं।

आचार्यशंकरके गुरुका नाम श्रीगोविन्दपाद तथा परमगुरुका नाम श्रीगौड़पाद था। श्रीगोविन्दपादके गुरु होनेपर भी गौड़पाद ही के आचार-विचार एवं शिक्षाओंका प्रभाव श्रीशंकराचार्यपर अधिक है। गौड़पाद तात्कालीन बड़े ही प्रभावशाली शून्यवादी बौद्धाचार्य थे।

सत्यके निर्भीक वक्ता एवं लेखक परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्मने उपसंहारमें यह घोषणा की है आज तक किसी भी वैष्णवधर्मावलम्बी महापुरुषने मायावादियोंसे आमने-सामने विचारमें परास्त होकर शुद्धभक्तिकी सर्वश्रेष्ठता अस्वीकारकर मायावादके शुष्क ज्ञानमार्गको ग्रहण नहीं किया है। किन्तु, इसके विपरीत श्रेष्ठ मायावादियोंने भी शुद्ध वैष्णव आचार्योंके साथ विचारयुद्धमें परास्त होकर मायावादको त्यागकर विष्णुका परमत्व अंगीकार किया है तथा ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिका श्रेष्ठत्व स्वीकारकर भक्तिधर्ममें दीक्षित हुए हैं। इसके उदाहरण चतुःसन, शुकदेवगोस्वामी आदि हैं। मूल ग्रन्थमें इसे विस्तारपूर्वक देखा जा सकता है।

एक बात और भी बहुत महत्वपूर्ण है। वह यह है कि श्रीशंकराचार्य, उनके गुरु गोविन्दपाद तथा परमगुरु गौड़पादको यथार्थतः मुक्ति नहीं मिली थी। क्योंकि मुक्तिके पश्चात् भी श्रीगोविन्दपाद या गौड़पादजीने शंकराचार्यको दर्शन दिया था तथा शंकराचार्यने भी विद्यारण्य भारतीके रूपमें जन्म लिया था। निर्विशेष मुक्तिके बाद जन्म लेना अद्वैतवादियोंके विचारके विरुद्ध है। शंकर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें ही इसका उल्लेख है। मूल ग्रन्थमें इसके प्रमाण दिये गये हैं।

अन्तमें यह निवेदन है, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं आचार्य मेरे सतीर्थवर परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज एक पराविद्यानुरागी एवं प्रतिभाशाली आचार्य हैं। वे ग्रन्थलेखक अस्मदीय गुरुपादपद्म जगद्गुरु आचार्यश्रीकेशरीके प्रिय और कृपापात्र हैं। वे श्रीश्रीगुरुदेवके करकमलोंमें उनके इस प्रिय ग्रन्थको समर्पणकर उनका प्रीतिविधान करें। यही उनके चरणोंमें प्रार्थना है।

ग्रन्थकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करने प्रूफ संशोधन आदि सेवा कार्योंके लिए श्रीमान् ओमप्रकाश ब्रजवासी एम.ए., एल-एल.बी., साहित्यरत्न, श्रीमान् नवीनकृष्णदास ब्रह्मचारी 'विद्यालंकार', श्रीमान् हरिप्रियदास ब्रह्मचारी 'विद्याभूषण', श्रीमान् परमेश्वरीदास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन', श्रीमान् पुरन्दारदास ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह' आदिके नाम विशेष उल्लेखके योग्य हैं। श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी इनके ऊपर कृपा वर्षण करें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि निरपेक्ष, सत्यपिपासु विद्वन्मण्डली एवं भक्तिपिपासु वैष्णवमण्डलीमें इसका समादर होगा। इसके द्वारा सत्यपिपासु श्रद्धालुजन मायावादके स्वरूपसे अवगत होकर शुद्धभक्तिके प्रति आकर्षित होंगे।

श्रीश्रीगुरुपादपद्मकी तिरोभाव-तिथि
शारदीय रासपूर्णिमा
भारतीयाब्द १९१८
(२६ अक्तूबर, १९९६ ई॰)

श्रीगुरुवैष्णव-कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डि भिक्षु—
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो॰ मथुरा (उ॰ प्र॰)

विषय–सूचि

(१) जीवनी आलोचनाकी धारा.१
(२) जीवनी और इतिहास १
(३) अनुकूल अनुशीलन २
(४) वैदिक युग और मायावाद..३
(५) मायावादके जन्मका कारण .३
(६) मायावाद किसे कहते हैं .५
(७) मायावादके सम्बन्धमें व्यासकी उक्तियाँ ६
(८) विज्ञान भिक्षुका मत ८
(९) बुद्धके सम्बन्धमें मतभेद— विष्णु बुद्ध और शाक्य सिंह बुद्ध एक नहीं हैं १०
(१०) अमरकोशके दो बुद्ध ११
(११) अन्य बौध ग्रन्थोक्त दो बुद्ध १३
(१२) अञ्जनसुत बुद्ध और सुद्धोधन बुद्ध पृथक् हैं १४
(१३) आचार्य शंकरका बौद्ध हैं— बौद्धमतानुसार शंकर बौद्ध हैं १७
(१४) बौद्ध और शाङ्कर सिद्धान्तोंका ऐक्य १७
(१५) बौद्धमतमें जगत् मिथ्या है...................... १८
(१६) शंकरमतमें भी जगत् मिथ्या है १८
(१७) ब्रह्म और शून्य २०
(१८) बुद्धका शून्यवाद २१
(१९) शंकराचार्यका ब्रह्मवाद . २२
(२०) बौद्धमतमें मोक्षका उपाय २३
(२१) आचार्य शंकरके मतानुसार मोक्षका उपाय.......... २५
(२२) बौद्धमतमें शून्य और ब्रह्म २७
(२३) शंकरके मतमें ब्रह्म और शून्य २८
(२४) अद्वयवादी और अद्वैतवादी २९
(२५) मायावादको बौद्धवादकी संज्ञा न देकर उसे छिपानेका कारण ३१
(२६) शंकर अपनी ही युक्तियों द्वारा बौद्ध प्रमाणित होते हैं ३३
(२७) शंकर महायानिक बौद्ध थे ३४
(२८) अद्वैतवादी शिवनाथ शिरामणिका मत....................... ३६
(२९) अद्वैतवादी राजेन्द्रनाथ घोषका मत...................... ३६
(३०) मायावादके प्रचारके कारण ३७
(३१) सत्ययुगमें ज्ञानवाद और..

उसकी परिणति 'चतुःसन' ३८
(३२) वास्कलि या वास्कल . ४०
(३३) त्रेतायुगमें अद्वयवाद और उसकी परिणति—वशिष्ठ ४२
(३४) रावण................... ४४
(३५) द्वापर युगमें अद्वयवाद और उसकी परिणति—शुकदेव ४५
(३६) कंस ४६
(३७) तीनों युगोंमें अद्वैतवादका परिणाम ४८
(३८) आधुनिक मतानुसार कालका विभाग.................. ४८
(३९) शाक्य सिंह ४९
(४०) दर्शन 'सप्तक' ५०
(४१) भर्त्तृहरि ५१
(४२) मायावादका सच्चास्वरूप—गौड़पाद ५२
(४३) गुरुके मतका खण्डन . ५३
(४४) शंकरका जन्म ५५
(४५) शंकर-विजय ५७
(४६) शंकरका प्रभाव ६०
(४७) यादवप्रकाश ६१
(४८) श्रीधरस्वामी ६४
(४९) श्रीबिल्वमंगल ६४
(५०) त्रिविक्रमाचार्य ६४
(५१) द्वितीय शंकर विधारण्य ६५
(५२) जयतीर्थ ६६
(५३) प्रकाशानन्द सरस्वती ... ६७
(५४) वासुदेव सार्वभौम....... ६९
(५५) उपेन्द्र सरस्वती.........७०
(५६) श्रीचैतन्यदेव और व्यासराय७०
(५७) मधुसूदन सरस्वती...... ७१
(५८) जयपुरमें मायावाद...... ७३
(५९) मायावादकी प्रेतात्मा ... ७३
(६०) पञ्चभङ्गी ७४
(६१) वैष्णव आचार्यके अतिरिक्त—दूसरे-दूसरे मनीषियों द्वारा मायावादका खण्डन ७४
(६२) आधुनिक अवस्था ७४

(६३) उपसंहार—

[क] ऐतिह्य ७६
[ख] निर्वाणरञ्य फलनिरोध ... ७७
[ग] ब्रह्मसूत्र-'मायामात्रन्तु' (३/२/३) की आलोचना ८०
[घ] स्वप्नका अर्थ मिथ्या नहीं है ८१
[ङ] द्विविध माया—छाया और प्रतिविम्ब ८२
[च] षड्दर्शन और उनमें चार नास्तिक्य दर्शन ८३
[छ] मायावादी नास्तिक हैं.... ८५
[ज] मायावादका आसुरिक विचार ८७
[झ] अद्वैतवाद दूषणम् ९१
[ञ] सांख्यमत दूषणम्......... ९२
[ट] न्यायमत दूषणम्.......... ९३
[ठ] संक्षेपतः मायावादकी असारता ९५

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

मायावादकी जीवनी
या
वैष्णव-विजय

जीवनी आलोचनाकी धारा

"मायामात्रन्तु कात्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्त्वात्"

(ब्रह्मसूत्र ३/२/३)

जन्म और मृत्युको लेकर ही जीवन है। जन्मसे लेकर मृत्युकालपर्यन्त स्थिति-कालके क्रियाकलापको जीवनी कहते हैं। किन्तु वर्तमान विचार-जगतके चिन्तास्रोतकी ओर लक्ष्य करनेसे जीवनीके साथ-साथ और भी अन्यान्य विषयोंकी आलोचना करनेकी आवश्यकता होती है, जिनमें 'जीवनारम्भका पूर्व-इतिवृत्त' और 'जीवनके अन्तमें सर्वसाधारणके प्रति उसकी प्रतिक्रिया'—ये दो प्रधान विषय हैं। अतः किसी भी व्यक्ति अथवा तत्त्व-जीवनीकी आलोचना उक्त भाव एवं धारासे सामञ्जस्य रखकर ही करनी चाहिए। मायावादकी जीवनी लिखते समय यदि उक्त भावधाराके साथ सामञ्जस्य न रखा जाय, तो जीवनीके पाठक सज्जनगण आशानुरूप सन्तुष्ट नहीं हो सकते। मायावाद एक तत्त्व है। इस तत्त्वकी जीवनी लिखते समय तत्त्ववादियोंकी आलोचना करना ही सुसङ्गत होगा, क्योंकि मायावाद-तत्त्व एक गुण जातीय द्रव्य है। यह किसी वस्तु-विशेषका आश्रयकर अपनी सत्ता प्रकाश करता है। अतः गुणके साथ-साथ गुणीकी आलोचना करना भी युक्तिसङ्गत है। ऐसे प्रसङ्गोंपर उनकी तुलनात्मक आलोचना नहीं होनेसे उस विषयका किसी प्रकार भी स्पष्टीकरण नहीं होता।

जीवनी और इतिहास

जिस उद्देश्यको लेकर जीवनीकी आलोचना की जाती है, वह उद्देश्य किस सीमा तक सफल होगा, मेरे लिए यह कहना कठिन है। फिर ऐतिहासिक

तत्त्वमूलक जीवनी और साधारण जीवनी एक नहीं। ऐतिहासिक तत्त्वमूलक जीवनीसे सर्वप्रकारके उद्देश्य साधित हुआ करते हैं अर्थात् जो प्रकृत सत्य है, उसे जाननेका हम भरपूर सुयोग पाते हैं। क्योंकि साधारण जीवनी-लेखक अपने निज अनुमोदित अंशमात्रको ही प्रकाशकर तृप्ति बोध करता है। दूसरी ओर इतिहासके आलोचक समस्त प्रकृत घटनाको प्रकाशकर पाठकोंको यथावत् तथ्यका सन्धान देते हैं। इसलिए मैं निरपेक्ष भावसे ऐतिहासिक सत्यतामूलक 'मायावादकी जीवनी' लिखनेके लिए प्रवृत्त हुआ। **मायावादकी जीवनीकी आलोचना करते हुए मैंने तदाश्रित मायावादियोंकी जीवनीका ही प्रधानरूपसे अवलम्बन किया है।** मायावादियोंकी जीवनीकी सुचारुरूपसे आलोचना किये जानेमें प्रसङ्गवशतः अन्य मतवादियों एवं वैष्णवोंकी जीवनी भी आलोचित हो जाती है, क्योंकि तुलनामूलक विचार ही विचार है, अन्यथा उसके यथार्थ तथ्यका उद्घाटन नहीं हो सकता। मायावादाश्रित मनीषियोंमें जगद्वरेण्य पूज्यपाद आचार्य श्रीश्रीमत्शंकर ही सर्वप्रधान एवं आदर्श हैं। इसलिए इनकी जीवनी और क्रियाकलापके ऊपर ही मायावादकी जीवनी अत्यधिक परिमाणमें निर्भर करती है।

अनुकूल अनुशीलन

वेदान्तके "तत् तु समन्वयात्" (ब्र॰ सू॰ १/१/४) सूत्रसे स्पष्ट है कि तद्वस्तु सम्यक्‌रूप अन्वय अर्थात् अनुकूल पथके अवलम्बनसे प्राप्त होती है। व्यतिरेक पथ वक्र और विषम होता है। गौड़ीय वैष्णवाचार्य मुकुटमणि श्रीलरूप गोस्वामिपादने अपने 'भक्तिरसामृत-सिन्धु' के प्रारम्भमें ही लिखा है—"आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्" अर्थात् कृष्णका अनुशीलन एकमात्र अनुकूल भावोंको अङ्गीकार करनेसे होता है। अतः किसी भी जीवन-तत्त्वके अनुशीलनके लिए अनुकूल भाव ग्रहण करना ही प्रशस्त होता है। अनुकूल पथके अवलम्बनसे प्रतिकूल-वर्जन जिस प्रकार आनुसङ्गिक है, उसी प्रकार अवश्यम्भावी भी है। 'हरिभक्ति-विलास' (११/४१७) का कथन है—*"आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य विवर्जनम्"*। भक्तिका प्रतिकूल वर्जन अनुकूल अनुशीलनका ही विशेष अङ्ग है। मैं मायावाद या अद्वैतवादकी जीवनीकी तुलनात्मक आलोचना भक्तिपथके अनुकूल समझता हूँ। सहृदय पाठकवर्ग इसे धीरभावसे मनन करें, तभी उनके हृदयमें भक्ति दृढ़तर होगी।

वैदिक युग और मायावाद

भारतीय सनातन धर्मावलम्बियोंमें **'मायावाद'** शब्दका प्रचलन देखा जाता है। किन्तु, वेद-उपनिषदादि ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। वैदिक-युगमें 'मायावाद' शब्दका उल्लेख न रहनेके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मायावाद चिन्तास्रोतके लिए तबतक कोई भी कारण उपस्थित न हुआ था। युगसृष्टिके पूर्व तक वेदोंके अधिष्ठानके सम्बन्धमें आर्य सनातन-धर्म्मावलम्बियोंमें परस्पर कोई मतभेद दृष्टिगोचर नहीं होता। वेद अपौरुषेय हैं। अतः सत्-सम्प्रदायोंके लिए वह निजस्व अथवा स्वरूप-सम्पत्ति है। काल-सृष्टि होनेके पहले अथवा प्राग्-युगमें मायावादके विचार-धाराकी गन्ध भी न थी। इधर वैदिक युगमें भी इसकी सत्ता वर्तमान न रहनेके कारण इससे वैदिक धर्मका ही पालन होता था। शास्त्रोंमें मायावादको अवैदिक कहनेका यह भी एक प्रधान कारण है, ऐसा प्रतीत होता है।

'एकमेवाद्वितीयम्' ही मायावादियोंका मूलमन्त्र है। अद्वयवाद या अद्वैतवाद मायावादका दूसरा नाम है। किसी-किसीका मत है कि, *'सोऽहं, 'अहं ब्रह्मास्मि'* प्रभृति वेदोंके कतिपय मन्त्र साधारण विचारसे मायावादका कथञ्चित पोषण करते हैं। युगचतुष्टयोंके पूर्व 'मैं ही भगवान् हूँ', 'मैं ही वह ब्रह्म हूँ', 'तुम भी वही ब्रह्म हो'—ऐसी उक्तियाँ जीवस्वरूपके पक्षमें सम्भव न थीं। क्योंकि वेद वज्रगम्भीर शब्दोंसे पुकार रहे हैं,—*"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।"* इस वाक्यमें बहुवचनान्त 'सूरयः' का तात्पर्य है सूरिगण अर्थात् सूरिगण तद्वस्तु विष्णुको ही एकमात्र परतत्त्व जानकर उनका परमपद सदा अर्थात् नित्यकाल दर्शन करते हैं। यहाँ दृश्य वस्तु एक और अद्वितीय तथा दर्शकोंका बहुत्त्व और पृथकत्व लक्षित होता है। अतः सनातन सूरिगणके पक्षमें विष्णुके परमपदके प्रति 'सोऽहं' प्रभृति वाक्यसमूहका मायावादानुरूप अभिव्यक्ति लक्ष्य नहीं किया जाता है।

मायावादके जन्मका कारण

जीवोंका जो नित्य-स्वभाव या नित्य-स्वरूप है, उससे पतित होनेसे उसे द्वितीय वस्तुमें अभिनिविष्ट होना पड़ता है। इसीसे उसके सामने तरह-तरहकी विपत्तियोंकी आशङ्का भी उपस्थित होती है। वेदोंके सङ्कलनकर्त्ता वेदव्यासका कथन है—

"भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।"

(श्रीमद्भा. ११/२/३७)

सूरिगणकी तरह विष्णु अथवा कृष्णके नित्य दर्शन (अर्थात् उनकी नित्यसेवा) से विच्युतिको ही द्वितीयाभिनिवेश कहते हैं एवं उसीसे मायाग्रस्तरूप भयकी उत्पत्ति होती है। उस समय *"कृष्ण भूलि सेई जीव अनादि-बहिर्मुख"* अर्थात् कृष्णको भूलकर अनादि बहिर्मुखताके क्रमसे ही जीव मायाके अधीन होता है। यही मायावश्यता भोग-वाञ्छा है। पण्डित जगदानन्दने कहा है—

'कृष्ण बहिर्मुख हञा भोगवाञ्छा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे।।'

(प्रेम विवर्त्त)

अर्थात् जो जीव भगवान् कृष्णसे बहिर्मुख होकर भोगवाञ्छा करता है, उसी समय समीपस्थ मायादेवी उसे दबोच लेती है।

जीव मायाग्रस्त होनेके साथ-ही-साथ अपना स्वरूप भूल जाता है। ऐसी अवस्थामें भोक्तृ अभिमानके कारण वह 'कृष्ण-स्वरूप' की समता कर बैठता है। भगवान् भक्तोंके निकट आनन्द लाभकर अथवा आत्माराम होनेके कारण परमानन्दमें मग्न हैं। भगवान्के इस आनन्द-भोक्तृत्वके एकच्छत्र अधिकारके प्रति इर्ष्यायुक्त होकर जीव उस पदपर स्वयं आरूढ़ होनेकी वासना करता है—यही अहंग्रह-भाव या पूर्ण बद्धावस्था है। इस प्रकार बद्धावस्थाकी बद्धधारणासे ही अर्थात् माया द्वारा कवलित होनेके बादसे ही जीव मायावादरूपी रोग द्वारा आक्रान्त हुआ। उसी समयसे 'सोऽहं' वादरूप मायावादके जन्मका कारण हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। अतः भगवान्से विमुख जीव ही मायाश्रयी अथवा मायावादी हो पड़ा है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि **ईश-भ्रान्ति और ईश-विमुखता ही मायावादके जन्मके मूल कारण हैं।**

भोगवासना उत्पन्न होनेके साथ-ही-साथ जीव मायिक जगत्में पतित हो जाता है। तब वह मायिक युग और मायिक-कालके भीतर 'अस्ति-नास्ति' 'अहं-मम', 'सत्-असत्' जैसे विचारोंके भीतर प्रवेश करता है। वह सत्य वस्तुको मिथ्या तथा मिथ्या वस्तुको सत्य समझता है। जगत् स्वप्न तुल्य मिथ्या है, भ्रान्तिमय अथवा भ्रान्तिसे ही जगत्की उत्पत्ति है; तत्त्व-वस्तु शक्तिहीन, लीला-विलासशून्य तथा निर्विशेष है—ऐसी अनेक धारणाएँ करता है।

यहाँ प्रसंगवश एक आश्चर्यके विषयको बिना बताये नहीं रह सकता, वह यह कि **ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शनके आनुमानिक ५५० सूत्रोंमें कहीं भी 'निःशक्तिक', 'निर्विशेष', 'निराकार' आदि शब्दोंका तनिक भी उल्लेख नहीं है। तथापि आचार्य शंकरने ब्रह्मसूत्रका भाष्य करते हुए बलपूर्वक ऐसे सिद्धान्तोंकी स्थापना की है। यही मायावादका अन्यतम प्रधान लक्षण है।**

मायावाद किसे कहते हैं?

मायावादका दूसरा नाम विवर्त्तवाद है। वेदोंमें विवर्त्तवादके जो उद्धरण देखे जाते हैं, वे अद्वैतवादियोंके प्रचारित अद्वैतवादसे सर्वथा पृथक् हैं। देहमें आत्मबुद्धि होना ही विवर्त्त है। ब्रह्ममें जगत्-भ्रम, यह वैदिक विवर्त्त नहीं, अपितु मायावाद है। आचार्य शङ्करका 'विवर्त्तवाद' ही 'मायावाद' है। मायावादकी जीवनी कहनेसे विवर्त्तवादकी भी जीवनी समझी जाती है। प्रकृत (वास्तव) मायावाद किसे कहते हैं, इस सम्बन्धमें प्रसङ्गवशतः स्थान-स्थानपर आलोचना की जाएगी। अभी संक्षेपमें निर्देश किया जा रहा है—

'माया' शब्द साधारणतः जड़ शक्ति या अविद्या शक्तिको लक्ष्य करता है। यह तत्त्व-वस्तुके स्वरूप-शक्तिकी छाया या प्रतिबिम्ब है। इस छायाशक्तिका चित् जगत्में प्रवेश करनेका अधिकार नहीं। यह जड़ जगत्की अधिकर्त्री है। जीव इसी मायाद्वारा आक्रान्त होकर जड़जगत्में बद्ध होकर मायावादका आश्रय ग्रहण करता है। मायावादका यह कथन है कि माया नामक कोई भी शक्ति नहीं। मायाको बाद देकर ही ब्रह्मकी स्थिति है। वे निःशक्तिक हैं। मायिक तर्क और युक्ति द्वारा इस मतकी स्थापना करनेकी चेष्टा करनेके कारण ये तर्कपन्थी लोग 'मायावादी' नामसे प्रसिद्ध हैं। मायिक युक्तिके बलपर मायावादका कथन है कि—"जीव ही ब्रह्म है', केवल मायाकी क्रियासे ब्रह्म विभिन्न जीवरूपमें दिखलाई पड़ता है। किन्तु, माया दूर होते ही जीवोंकी पृथक् सत्ता नहीं रहती। जबतक माया है, उसके आवरणमें जीव रहेगा।" जो लोग मायाके सहित जीवका ऐसा सम्बन्ध स्थापित करते हैं, वे ही मायावादी हैं अर्थात् वे लोग वेद-वेदान्तको न मानकर बलपूर्वक मायिक तर्क द्वारा कहते हैं—"माया दूर होनेसे जीवका कोई पृथक् अस्तित्त्व नहीं रहेगा। जीवकी मायामुक्ति, इस प्रकारकी कोई भी विशुद्ध अवस्था नहीं।" मायावादियोंका यह विचार कुसिद्धान्तमूलक है। मायावादमें जीवकी नित्य-शुद्ध सत्ताकी कोई भी अवस्था स्वीकृत नहीं, अपितु मायावाद प्रमाणित

करना चाहता है कि ईश्वर भी मायाग्रस्त तत्त्व है। ऐसा होनेसे तो ईश्वरको भी मायामुक्त होनेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्थामें ईश्वर और जीवमें वस्तुतः पार्थक्य ही क्या रहा? केवल मात्र कर्मफलसे अतीत अवस्था तथा कर्मफलकी बाध्यता ही ईश्वर और जीवके भेदको निरूपित करती है, ऐसा समझकर तत्त्व-निर्देश किये जानेसे ही मायावाद आ आता है। यदि जीव और ईश्वर-तत्त्वका ऐसा निरूपण किया जाय, तो इसकी अपेक्षा अधिक शोचनीय सिद्धान्त और क्या हो सकता है? यही उनके माया ग्रस्त होनेका प्रधान लक्षण है एवं इसके द्वारा वे निर्विकल्पमें भी उद्धार लाभ न कर सकेंगे। उनका निर्वाण एक मिथ्या और काल्पनिक विचार-मात्र है। ऐसे निर्वाण या निर्विकल्प मुक्तिका कहीं भी कोई प्रमाण या दृष्टान्त नहीं। अतः मायावादकी गणना वेद-वेदान्तानुग विशुद्ध पारमार्थिक सम्प्रदायोंमें नहीं की जा सकती—यही क्रमशः ऐतिह्यके प्रमाणोंके आधारपर प्रदर्शित होगा।

मायावादके सम्बन्धमें व्यासकी उक्तियाँ

वेदके विभाग करनेके समय भेद सूचक वाक्योंका सर्वतोमुखी विविध प्रमाण लक्ष्य करते हुए भी बादरायण ऋषिने किञ्चित् परिमाणमें अभेदका भी सङ्केत पाया था। वेदोंके ऐसे अभेद सङ्केतों द्वारा मायावादकी सृष्टि हो सकती है, उन्होंने इसका कुछ-कुछ अनुमान लगाया था—ऐसा प्रतीत होता है। त्रिकालज्ञ आचार्योंके सम्बन्धमें यह कुछ अस्वाभाविक नहीं। अद्वैतभाव वेदोंका असम्पूर्ण एकदेशीय व्यापार है। वस्तुके पूर्णत्वका विचार न कर आंशिक विचार करनेसे उसे सत् विचारके रूपमें नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रत्युत् आंशिक सत्यको पूर्ण सत्यके रूपमें स्थापित करनेकी चेष्टाको असत् चेष्टा या वञ्चना कहते हैं। कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यासने अपने रचित पुराणोंमें ही मायावादके असत् और अवैदिक होनेकी घोषणा की है—

"मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।"

(पद्मपुराण उ. ख. २५ अ. ७ श्लोक)

पद्मपुराणके विभिन्न स्थलोंमें, कूर्मपुराणके पूर्वभागमें तथा अन्यान्य पुराणोंमें मायवादके भावी आविर्भावकी उक्तियाँ देखी जाती हैं। उन्होंने पद्मपुराणमें मायावादको एक अवैदिक मत कहा है। वैदिक युगमें अर्थात्

वेदोंमें मायावादका स्थान नहीं है—यह मैंने पहले ही निवेदन किया है। इसके सम्बन्धमें पद्मपुराणकी स्पष्ट उक्ति है—

वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव कथितं देवि! जगतां नाश–कारणात्।।

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद अपने 'जैवधर्म' नामक ग्रन्थमें मायावादके सम्बन्धमें लिखते हैं—"असुरगण भक्तिपथ ग्रहण करते हुए असत् उद्देश्य सफल करनेकी चेष्टा करने लगे। ऐसा देखकर सरल-हृदय जीवोंके प्रति भक्त-वात्सल्य-प्रयुक्त करुणामय भगवान्ने ऐसा उपाय सोचा जिससे कि ये असुरगण किसी प्रकार भक्ति-पथको भ्रष्ट न कर सकें। उन्होंने श्रीमहादेवको बुलाकर कहा—'हे शम्भो! तामस-प्रवृत्तिवाले असुरोंके निकट शुद्ध-भक्ति-प्रचार करनेसे जैव जगत्का मङ्गल न होगा। तुम असुरोंको मोहित करनेके लिए एक ऐसे शास्त्रका प्रचार करो, जिसमें मुझे गोपनकर मायावाद प्रकाशित हो, जिसमें आसुरिक चिन्तामग्न जीवगण शुद्धभक्तिपथका परित्यागकर उस मायावादका आश्रय करें और हमारे सहृदय भक्तगण निःसंशय होकर शुद्ध-भक्तिका आस्वादन कर सकें।"

भगवान् विष्णु रुद्रसे कह रहे हैं—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।।

(पद्मपुराण उ. ख. ४२-११०)

एष मोहं सृजाम्याशु यो जनान् मोहयिष्यति
तञ्च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय।।
अतख्यानि वितख्यानि दर्शयस्व महाभुज।
प्रकाशं कुरु चात्मानमप्रकाशञ्च मां कुरु।।

(वराहपुराण)

[अर्थात् हे शम्भो! तुम कलियुगमें मनुष्य आदि जीवाके बीच अंशरूपसे अवतीर्ण होकर कल्पित अर्थात् मिथ्या-निर्मित अपने तन्त्रादि द्वारा मनुष्योंको मुझसे बहिर्मुख करो। उन कल्पित-शास्त्रोंमें मेरे नित्य-भगवत् स्वरूपका विषय गुप्त रखो। इससे जगत्की बहिर्मुख सृष्टि उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होती रहेगी।

मैं इस तरहकी मोहसृष्टि कर रहा हूँ, जो जनसमुदायको मोहित करेगी। हे महाबाहो रुद्र! तुम भी मोहशास्त्रका प्रणयन करो। हे महाभुज! अन्याय

और भगवत्-स्वरूप-प्रकाशका विरोधी मायिकयुक्त जाल प्रदर्शन करो, अपने रुद्ररूप (आत्मविनाशरूप संहार-मूर्तिका प्रकाश करो तथा मेरे नित्य भगवत्स्वरूपको आच्छादित करो।]

(ठाकुर भक्तिविनोदकृत 'जैवधर्म' १८वाँ अध्याय)

विज्ञान भिक्षुका मत

शंकर-सम्प्रदायके कतिपय विद्वानोंका विचार है कि पद्मपुराणमें इस प्रकारके उक्तिसमूह वैष्णवोंके द्वारा ईर्ष्यावश प्रक्षिप्त किये गये हैं। किन्तु सांख्य-योगी या समन्वयवादी विज्ञानभिक्षुने 'सांख्यप्रवचन भाष्य' की भूमिकामें पद्मपुराणके इस वचनको उद्धृत किया है। पाठकवर्गकी अभिज्ञताके लिए उसे उद्धृत किया जा रहा है—

''अस्तु वा पापिनां ज्ञानप्रतिबन्धार्थमास्तिक-दर्शनेष्वप्यंशतः श्रुतिविरुद्धार्थ-व्यवस्थापनम्। तेषु तेष्वंशेष्वप्रामाण्यं च। श्रुतिस्मृत्यविरुद्धेषु तु मुख्यविषयेषु प्रामाण्यमरत्येव। अतएव पद्मपुराणे ब्रह्मयोगदर्शनातिरिक्तानां दर्शनानां निन्दाप्युपपद्यते।''

यथा तत्र पार्वतीं प्रतीश्वरवाक्यम्—

श्रृणु देवि! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि।।
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः संप्रोक्तानि ततः परम्।।
कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।
गौतमेन तथा न्यायं सांख्यन्तु कपिलेन वै।।
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमयार्थतः।
निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्।।
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम्।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा।।
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।।
मयैव कथितं देवि! कलौब्राह्मण रूपिणा।
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयल्लोक गर्हितम्।।
कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते।
सर्वकर्म परिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते।।

परात्म जीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते।
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया।।
सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौयुगे।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात्।।
इति—अधिकं तु ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रपञ्चितम-स्माभिरिति।

(सांख्यदर्शनम्-विज्ञान भिक्षु-विरचित भाष्य—श्रीजीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य कर्त्तृक १२९६ बं. सालमें प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, भूमिका—५-६ पृष्ठ)

समस्त दर्शनोंका सामञ्जस्य स्थापन करना ही विज्ञान-भिक्षुका उद्देश्य था। उन्हें आचार्य शंकरसे ईर्ष्या न थी, वरं निरपेक्ष भावसे उनके गुण और दोष दोनोंकी ही आलोचना उन्होंने की है। वास्तवदर्शी महाजनगण सत्यको सत्य एवं मिथ्याको मिथ्या ही जानते हैं। सत्यको मिथ्या या मिथ्याको सत्य नहीं जानते। किसी काल्पनिक मतका दोष दिग्दर्शन कराना ही यदि ईर्ष्यामूलक व्यवहार कहा जाय तो आचार्य शङ्कर भी उस दोषसे मुक्त न थे। उन्होंने शाक्यसिंह बुद्धको पागलकी आख्या देते हुए भी त्रुटि न की। आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कहा है—“सुगत बुद्धने असम्बद्ध प्रलापोक्ति अर्थात् मतिभ्रष्टकी भाँति प्रलाप किया है।” उक्त भाष्य नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

“बाह्यार्थ-विज्ञान-शून्यवादत्रयमितरेतर-विरुद्धमुपदिशता ‘सुगतेन’ स्पष्टीकृतमात्मनोऽसम्बद्ध प्रलापित्वं।”

(ब्रह्मसूत्र शङ्करभाष्य—२/१/३२)

सुगतके प्रति शङ्कराचार्यके ऐसे श्लेषयुक्त वचनोंको देखकर कोई ऐसा न समझे कि शङ्कर बौद्ध मतके विद्वेषी थे। सुगत बुद्धके विज्ञानात्मवाद तथा बाह्यात्मवादका खण्डन करनेके लिए उन्होंने जिस बड़े समारोहके साथ युक्तियों तथा तर्कोंकी अवतारणा की है, शून्यवादके खण्डनमें उनकी वैसी चेष्टाएँ नहीं देखी जातीं। शङ्करकी श्रद्धा भीतर ही भीतर बुद्ध तथा उनके शून्यवादके प्रति प्रभूत परिमाणमें थी—इसका स्पष्टीकरण पीछे किया जाएगा। व्यासदेवकी इन उक्तियोंसे विदित होता है कि आचार्य शङ्कर प्रच्छन्न बौद्ध थे। बुद्धके वेद-विरुद्ध मतवादको उन्होंने वेदके साँचेमें ढालकर इस जगत्में प्रचुररूपसे प्रचार किया है।

बुद्धके सम्बन्धमें मतभेद
विष्णुबुद्ध और शाक्यसिंह बुद्ध एक नहीं हैं

पुराणोंके विभिन्न स्थलोंमें मायावादको बौद्धमतवाद कहा गया है—ऐसा देखा जाता है। ऐसी परिस्थितिमें यहाँ बौद्धमतवादके सम्बन्धमें भी प्रसङ्गवशतः कुछ आलोचना होनी आवश्यक है। बुद्धदेवका मतवाद ही बौद्धवाद है। अतः बुद्धदेवके सम्बन्धमें शास्त्रोंका विचार क्या है, पाठकवर्गको यह जानना आवश्यक है। श्रीबुद्धदेव विष्णुके दश अवतारोंमें अन्यतम हैं। श्रील जयदेव गोस्वामी लिखते हैं—

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते।
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृतेकृष्णाय तुभ्यं नमः।।

उन्होंने अन्यत्र दशावतार-स्तोत्रके नवम स्तोत्रमें बुद्धदेवके सम्बन्धमें लिखा है—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदय – हृदय – दर्शित – पशुघातम्।
केशवधृत बुद्ध शरीर जय जगदीश हरे।।

ये ही बुद्धदेव यदि विष्णु हों, तब शंकराचार्यके साथ उनका क्या सम्बन्ध है, इस विषयकी विशद् आलोचना होनी चाहिए। शंकरके मतवादको यदि बौद्ध-मतवाद कहना हो तो दोनोंके बीच सम्बन्ध कहाँ है, उसके अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता है।

आचार्य शङ्करने बुद्धदेवके सम्बन्धमें जो विचार किया है, वह विशुद्ध प्रतीत नहीं होता। वे कहना चाहते हैं कि वैष्णवोंके उपास्य बुद्ध और शाक्यसिंह बुद्ध एक हैं। किन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। परमपूज्य आचार्यकुल शिरोमणि जगद्‌गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका बुद्धके सम्बन्धमें कथन है—"शाक्यसिंह बुद्ध एक अतिज्ञानी जीव मात्र हैं।" अतः उन्हें भगवत्-अवतार बुद्धके सहित एकाकार करने अथवा समान समझनेसे शाक्यसिंह बुद्धके प्रति आचार्य शङ्करकी यथेष्ट आन्तरिक श्रद्धाभक्तिका ही परिचय मिलता है। उनके द्वारा सुगत बुद्धको 'असम्बन्ध प्रलापकारी' कहकर श्लेष उक्ति करनेपर भी वह लोक-छलनाके लिए केवल बाहरी रोषाभास प्रदर्शनमात्र ही है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि आचार्य शंकरने किस स्थलपर ऐसा मन्तव्य प्रकट किया है, जिससे गौतम बुद्ध और भगवान् बुद्धका एक होना प्रतीत होता है? इसके उत्तरमें मैं सज्जन पाठक वर्गको शंकरभाष्यपर विचार करनेके लिए अनुरोध करता हूँ। इस सम्पर्कमें हमारे पूर्व प्रदर्शित भाष्यधृत अंशमें 'सुगतेन' शब्द द्वारा उन्होंने आदि बुद्ध न जानकर शुद्धोदन और माया-पुत्र गौतम बुद्धको ही समझा है। बुद्धके सिद्धान्तके सम्बन्धमें उनका नाम उल्लेखकर अपने भाष्यमें उन्होंने कहा है—*"सर्वथा अपि अनादरणीय अयं सुगत-समयः श्रेयस्कामैः इति अभिप्रायः।"* इस वाक्यमें उन्होंने मायापुत्र बुद्धको ही सुगत बुद्ध कहनेका भ्रम किया है। 'समयः' शब्दसे सिद्धान्तका बोध होता है। 'सुगत-समय' कहनेसे 'सुगत-सिद्धान्त' या 'गौतम-सिद्धान्त'का बोध होता है। आदि बुद्ध या विष्णुके अवतार बुद्धका दूसरा नाम सुगत है। यही नाम बौद्ध सम्प्रदायमें प्रचलित है। 'अमरकोष' इसका साक्षी है। इसके रचयिता शून्यवादी बौद्ध अमरसिंह हैं। यह एक सुप्राचीन ग्रन्थ है। अमरसिंहका आविर्भावकाल आचार्य शंकरके आविर्भावसे न्यूनाधिक १५० वर्ष पूर्व होनेका अनुमान किया जाता है। वे द्विज शबर स्वामीकी एक शूद्राणीके गर्भजात पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें पण्डित-समाजमें अति प्राचीन समयसे एक श्लोक प्रचलित है—

ब्राह्मण्यामभवद् वराहमिहिरो ज्योतिर्विदामग्रणीः
राजा भर्त्तृहरिश्च विक्रमनृपःक्षत्रात्मजायामभूत्।
वैश्यायां हरिचन्द्र वैद्यतिलको जातश्च शङ्कुः कृती।
शुद्रायाममरः षड़ेव शबरस्वामी द्विजस्यात्मजाः।।

अमरकोषके दो बुद्ध

अमरसिंहने बौद्ध-धर्मके अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। दैववश उनके सारे ग्रन्थ आचार्य शङ्करके हाथोंमें पड़े। आचार्यने 'कोष-ग्रन्थ' को रख बाकी सभी ग्रन्थोंको जला दिया। उनके द्वारा सुरक्षित इसी अमरकोषमें ही बुद्धदेवके सम्बन्धमें लिपिबद्ध है—

"सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः।।

षड्भिज्ञो दशवलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्तामुनिः" (६) 'शाक्यमुनिस्तु यः।।
स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्ध शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्क बन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः।।"(७)

उक्त श्लोकमें 'सर्वज्ञः' से लेकर 'मुनिः' पर्यन्त अठारह नामोंसे बुद्ध अर्थात् आदि बुद्ध (६) को लक्ष्य किया गया है। 'शाक्यसिंहमुनिस्तु' से 'मायादेवीसुतश्च सः' पर्यन्त शाक्यसिंह बुद्ध (७) को लक्ष्य किया गया है। उक्त अठारह नामोंसे परिचित बुद्ध और बादके सात नामोंसे परिचित बुद्ध कभी एक नहीं हैं। इस सम्बन्धमें श्रीरघुनाथ चक्रवर्ती महोदयकी टीका आलोच्य है। मैं उसके प्रयोजनीय अंशको उद्धृतकर पाठकवर्गको समझानेकी चेष्टा करूँगा। चक्रवर्ती महोदयने उक्त श्लोकोंमें 'मुनिः' पर्यन्तको एक भाग एवं अवशिष्ट अंशको एक दूसरे भागमें विभक्तकर स्वर्ग वर्गमें '६' और '७' दोनों संख्याओंमें टीका की है। '६' संख्या यथा—

"मुनिः पर्यन्तम् अष्टादश बुद्धेः"

अर्थात् 'सर्वज्ञ' शब्दसे लेकर 'मुनिः' पर्यन्त बुद्ध-वाचक है। अतः सुगत-शब्द भी विष्णुबुद्ध-वाचक है। अब '७' संख्याकी टीका देखिए—

"एते सप्त शाक्यवंशावतीर्णे बुद्धमुनि विशेषे"

अर्थात् 'शाक्यसिंह' शब्दसे 'मायादेवी सुतश्च' पर्यन्त ७ शब्दोंसे शाक्यवंशावतीर्ण शाक्यसिंह मुनि या बुद्धमुनिको समझा जाता है। उक्त श्लोक तथा टीकासे स्पष्टतः प्रतीत होता है कि **सुगत बुद्ध और शून्यवादी मुनि बुद्ध एक नहीं हैं।** यहाँ पाठकवर्गसे माननीय Mr. Carey महोदय द्वारा मुद्रित तथा Mr. H.T. Cole Brooke महोदय द्वारा सन् १८०७ ई. में श्रीरामपुरसे प्रकाशित 'अमरकोष' ग्रन्थको देखनेका अनुरोध करूँगा। इस ग्रन्थके २ और ३ पृष्ठोंपर 'बुद्ध' शब्दका परिचय दिया गया है। २ पृष्ठपर Marginal note में प्रथमोक्त अष्टादश नामोंके सम्बन्धमें 'AJINA Or. BUDDHA' लिखा है तथा शेषके सात नामोंके Marginal note में इस प्रकार लिखा है BUDDHA। इस शेषोक्त बुद्ध शब्दके (b) foot note में लिखा है, (b) The founder of the religion named from him. श्री एच. टी. कोल ब्रुक महोदयने जिन जिन टीकाओंका अवलम्बनकर इस ग्रन्थको प्रकाशित किया है, उन्हें अपनी भूमिकामें लिपिबद्ध किया है। उन्होंने माननीय रघुनाथ चक्रवर्ती महोदयकी टीकाके अलावा भी अन्य

पच्चीस टीकाओंका उल्लेख किया है। गौतम बुद्धने ही बाह्यात्मवाद, ज्ञानात्मवाद तथा शून्यवादकी स्थापना की है। **'सुगत'बुद्धमें किसी प्रकारकी नास्तिकताकी गन्धका प्रमाण भी नहीं मिलता।** शून्यवादी सिद्धार्थ कपिल-वंशके गौतम मुनिके शिष्य थे, इसीलिए उनका दूसरा नाम गौतम है।

"गुरुगोत्रादतः-कौत्सास्ते भवन्ति स्म गौतमाः"

—सुन्दरानन्द चरित

अन्य बौद्ध-ग्रन्थोक्त दो बुद्ध

आचार्य शंकरद्वारा आदृत अमरकोषके अतिरिक्त बौद्धशास्त्रके अन्य ग्रन्थ जैसे 'प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'अष्टसाहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'शत-साहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'ललित विस्तार' आदि ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे भी हम **मनुष्य बुद्ध, बोधिसत्त्व बुद्ध और आदि बुद्ध—इन तीनों श्रेणियोंके बुद्धके विषयमें अवगत होते हैं। मनुष्य-बुद्धमें गौतम बुद्ध भी एक हैं।** ज्ञान लाभ करनेके बाद ये 'बुद्ध' नामसे प्रसिद्ध हुए। बोधिसत्त्व-बुद्धमें 'समन्त-भद्रक' का उल्लेख किया गया है। अमरकोषोक्त भगवान् बुद्धका अपर नाम 'समन्त भद्र' है एवं 'गौतम' मनुष्य बुद्ध हैं। अमरकोषमें लिखे गये अवतार बुद्धके अठारह नामोंके अतिरिक्त उल्लिखित ग्रन्थोंमें और भी अनेक बुद्धोंका उल्लेख पाया जाता है। 'ललित-विस्तार' ग्रन्थके २१ वें अध्यायके १७८ पृष्ठमें लिखा गया है कि 'पूर्व बुद्ध'के स्थानपर गौतम बुद्धने तपस्या की थी—

"एष धरणीमण्डे पूर्व बुद्धासनस्थः"
समर्थ धनुर्गृहीत्वा शून्य-नैरात्मवाणैः।
क्लेशरिपुं निहत्वा दृष्टिजालञ्चभित्वा-
शिव विरजमशोकां प्राप्स्यते वांधिमग्र्यां॥

उक्त श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शाक्यबुद्ध ने पूर्व बुद्धके आविर्भाव-क्षेत्रको अपनी सिद्धिके अनुकूल समझकर वहीं एक पीपल-वृक्षके नीचे तपस्या की थी। इस स्थानका प्राचीन नाम कीकट था, पर गौतम बुद्धके वहाँ सिद्धि प्राप्त करनेके बादसे उस स्थान का नाम 'बुद्ध गया' (बोध गया) हो गया है। यहाँ आज भी बुद्धदेवकी प्रतिमूर्ति शंकर-सम्प्रदायके गिरि संन्यासियोंके अधिनायकत्वमें परिसेवित हो रही है। वे स्वीकार करते हैं कि बुद्ध-गया ही, 'पूर्व बुद्ध,' 'आदि-बुद्ध' या 'विष्णु-बुद्ध'का आविर्भाव

स्थान है। यह स्थान शाक्यसिंह बुद्धके मुक्ति लाभ करनेका उपासना क्षेत्र मात्र है। इसके द्वारा स्पष्ट प्रमाणित होता है कि **प्राचीन 'अवतार बुद्ध' और वर्तमान 'गौतम बुद्ध' एक नहीं हैं।**

'लंकावतार सूत्र' एक प्रसिद्ध प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ है। इसमें भी जिस बुद्धका उल्लेख मिलता है, उससे पता चलता है कि उल्लिखित बुद्ध आधुनिक शाक्यसिंह बुद्धसे पृथक् हैं। इस ग्रन्थके प्रथम भागमें ही लंकाधिपति रावणने जिन-पुत्र भगवान् पूर्व-बुद्ध तथा भविष्य कालमें आविर्भूत होने वाले बुद्ध या बुद्धसुत—सभीका स्तव किया था। पाठकवर्गकी जानकारीके लिये उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

अथ रावणो लङ्काधिपतिः तोटक वृत्तेनानुगाय्य पुनरपि गाथागीतेन अनुगायति स्म।

लंकावतार सूत्रं वै पूर्वबुद्धानुवर्णितं।
स्मरामि पूर्वकैः बुद्धैर्जिनपुत्रपुरस्कृतैः॥९॥
सूत्रमेतन्निगद्यन्ते★ भगवानपि भाषतां।
भविष्यन्त्यनागते काले बुद्धा बुद्धसुताश्च ये॥१०॥

—[लङ्कावतारसूत्रं—1st Eddn. Fasc 1—by S.C. Das, C.I.E. & S.C. Acharya Vidyabhusan M.A., M.R.A.S.; Published by the Buddhist Text Society of India under the patronage of Government of Bengal. Printed at the Government Press, in January, 1900.]

अञ्जनसुत बुद्ध और शुद्धोदन बुद्ध पृथक् हैं

कुछ लोग कह सकते हैं कि आचार्य शङ्करकी अपेक्षा वैष्णवोंने ही बुद्धके प्रति अधिक सम्मान और आन्तरिक श्रद्धा प्रदर्शित की है। अतः वैष्णवोंको भी बौद्ध कहा जाय। यहाँ मेरा मत यह है कि लिङ्गपुराण, भविष्यपुराण तथा वराहपुराणोक्त दशावतारके वर्णन प्रसंगमें नवम अवतार-स्वरूप जिस बुद्धका उल्लेख आया है, वे बुद्ध शुद्धोदनके पुत्र गौतम बुद्ध नहीं हैं। वैष्णव लोग शून्यवादी बुद्धकी पूजा नहीं करते। वे *"नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानव-मोहिने"* (श्रीमद्भा॰ १०/४०/२२) मन्त्र उच्चारण करते हुए श्रीबुद्धदेव को अर्थात् विष्णुके नवम अवतार बुद्धको नमस्कार करते हैं।

(★"निगद्यते is correct")

श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र श्रीबुद्धदेवके आविर्भावके सम्बन्धमें जो वर्णन आया है, उसे नीचे उद्धृत किया जाता है—

"ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्नाजिनसुतः 'कीकटेषु' भविष्यति॥"

(श्रीमद्भा॰ १/३/२४)

इस श्लोकमें जिस बुद्धका उल्लेख किया गया है, वे अञ्जनके पुत्र हैं, जिन्हें कुछ लोग अजिनके पुत्र भी कहते हैं तथा इनका आविर्भाव कीकट नामक स्थान अर्थात् गयामें हुआ था। पूज्यपाद श्रीधरस्वामीने उपर्युक्त श्लोककी टीका इस प्रकार की है—

"बुद्धावतारमाह तत इति। अञ्जनस्य सुतः। अजिन सुत इति पाठे अजिनोऽपि स एव। 'कीकटेषु' मध्ये गया-प्रदेशे।"

अद्वैतवादी भूलवशतः अथवा किसी दूसरे कारणसे ही हो श्रीधरस्वामिपादको अपने सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त मानते हैं। कुछ भी हो इस सम्बन्धमें उनकी उक्तिको मायावादियोंके लिये सत्य समझकर ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। वे कहते हैं कि 'अञ्जनसुत-बुद्ध भागवत-सम्प्रदायके पूज्य हैं एवं उनका जन्मस्थान गया प्रदेशमें है। कलिके सम्यक् आगमनमें अर्थात् प्रारम्भमें उनका आविर्भाव होता है।' नृसिंह पुराणमें (३६/२९) इसी प्रकार लिखा गया है—

"कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भवन्नारायण-प्रभुः।"

इससे विदित होता है कि भगवान् बुद्धका आविर्भाव कम-से-कम आजसे ३५०० वर्ष पूर्व तथा ज्योतिषके मतानुसार ५००० वर्ष पूर्व है। उनकी जन्म-तिथिके सम्बन्धमें निर्णयसिन्धु द्वितीय परिच्छेदमें लिखा है—

"ज्यैष्ठ शुक्ल द्वितीयायां बुद्धजन्म भाविष्यति।"

अर्थात् ज्येष्ठमासके शुक्ल-पक्षकी द्वितीया-तिथिमें बुद्धदेवका जन्म होगा। उक्त ग्रन्थमें अन्यत्र बुद्धदेव की पूजाके सम्बन्धमें लिखा है—

"पौष शुक्लस्य सप्तम्यां कुर्यात् बुद्धस्यपूजनम्।"

अर्थात् पौष मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें बुद्धदेवकी पूजा करनी चाहिए। बुद्धदेवके सम्बन्धमें उक्त प्रकारकी पूजा, नमस्कार और अर्चन-

विधि जो दृष्ट होती है, वह विष्णुके नवम अवतार बुद्धको लक्ष्य करती है। विष्णुपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण और स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंपर उनके सम्बन्धमें उल्लेख है। देवी भगवत नामक एक आधुनिक ग्रन्थमें तथा शक्ति-प्रमोद नामक दूसरे ग्रन्थमें भी जनैक बुद्धका प्रसंग उल्लिखित हुआ है, वे शाक्यसिंह बुद्ध हैं—विष्णु बुद्ध नहीं। देव-देवियोंके सेवक अथवा पञ्चोपासक शून्यवादी शाक्यसिंह बुद्धकी यदि किसी तरह पूजा अथवा सम्मानादि करें, तो उसमें उससे सनातन धर्मावलम्बी भागवतोंका कुछ भी बिगड़ता नहीं। मैक्समूलरके (Maxmullar) विचारसे शाक्यसिंह बुद्धका जन्म ईसासे ४७७ वर्ष पूर्व (?) कपिल वस्तु नगरके लुम्बिनी वनमें हुआ था। प्राचीन कपिलवस्तु नगर नेपालकी तराईमें एक प्रसिद्ध जनपद है। गौतमके पिताका नाम शुद्धोदन और माताका नाम मायादेवी था। यह ऐतिहासिक प्रसिद्ध सत्य है। अञ्जन-पुत्र एवं शुद्धोदन-पुत्र—उभय पुत्रोंके नाम एक होनेपर भी वे व्यक्ति एक नहीं हैं। एकका आविर्भाव स्थान 'कीकट' अर्थात् 'गया' है—जो बोधगयाके नामसे आजकल प्रसिद्ध है और दूसरेका जन्म स्थान कपिलवस्तु नगर है। अतः विष्णु-बुद्धके आविर्भाव-स्थान तथा माता-पिता प्रभृति सभी गौतम बुद्धके जन्म-स्थान और माता-पिता आदिसे सम्पूर्ण पृथक् हैं।

अब देखा जाता है कि साधारणतः लोग जिन्हें 'बुद्ध' कहते या समझते हैं, असलमें वे विष्णुके नवम अवतार बुद्ध नहीं हैं। आचार्य शंकरका इस सम्बन्धमें जो विचार है, हम उसके साथ एकमत नहीं हो पाते। अवश्य ऐतिह्यमूलक विचारोंमें इसी प्रकार मतभेद प्रायः दृष्टिगोचर होता है, तथापि किसी गुरुत्वपूर्ण विषयकी निरपेक्ष भावसे आलोचना होने की नितान्त आवश्यकता है। बुद्धका ऐश्वर्य देखकर उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापन करना एक बात है और उनके सिद्धान्त तथा विचारोंसे आकृष्ट होकर उनकी पूजा और सम्मान करना कुछ और बात है। जैसा भी हो मेरा विश्वास है, पाठकवर्ग स्पष्ट ही समझ गये होंगे कि बुद्ध केवल एक नहीं हैं शाक्यसिंह बुद्ध और अवतार बुद्ध सम्पूर्ण पृथक् हैं। हो सकता है कि दोनोंके बीच किसी-किसी अंशोंमें साम्य भी हो, तथापि दोनोंको कभी भी एक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आचार्य शंकरका बौद्धत्व

बौद्धमतानुसार शंकर बौद्ध हैं

बौद्ध मतावलम्बी किशोरी मोहन चट्टोपाध्यायने अपने प्रकाशित 'प्रज्ञा-पारमिता सूत्र'—१७७ पृष्ठमें लिखा है—'बौद्धोंका शून्यवाद' और हिन्दुओंका (शंकराचार्यका) 'ब्रह्मवाद' एकार्थ बोधक विभिन्न शब्द मात्र हैं। किशोरी मोहन एक प्रधान बौद्ध-धर्मावलम्बी थे, इसमें कोई मतभेद नहीं है। आचार्य शंकर और बुद्धदेवका एक ही मत था, इसे उन्होंने उक्त ग्रन्थमें प्रमाणित किया है। विज्ञान भिक्षु प्रमुख सांख्यके दार्शनिक पण्डितगण, पातञ्जल दार्शनिक योगिगण, वेदान्त दार्शनिक श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीबलदेव प्रभृति आचार्योंने, यहाँतक कि बौद्ध पण्डितोंने भी शङ्करको बुद्ध विचारधाराके परिपोषकरूपसे ग्रहण किया है। शंकरने स्वयं ही हमारी पूर्वप्रदर्शित युक्तियोंके अनुसार बुद्धके प्रति यथेष्ट श्रद्धा और सम्मानका प्रदर्शन किया है। विविध पुराणोंमें शङ्करवादका प्रच्छन्न बौद्धवादके नामसे निर्देश किया गया है। पुराणोंकी उन उक्तियोंको अकाट्य समझकर शङ्करवादी अनेक व्यक्ति उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहकर कपट युक्ति पेश करना चाहते हैं। असलमें उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहनेका कोई भी यथार्थ कारण नहीं है।

बौद्ध और शांकर सिद्धान्तोंका ऐक्य

ऐतिह्यके आधारपर अनेक प्रकारसे हमने शंकरमत और बौद्धमतमें परस्पर सौसादृश्य लक्ष्य किया है। केवल ऐतिह्यके बलपर आचार्य शंकरको प्रच्छन्न बौद्ध कहनेसे, हो सकता है—मायावादियोंको कुछ आपत्ति हो। उनकी इस आपत्तिको दूर करनेके लिये तथा उनके सन्तोष विधानके लिए शंकर तथा बुद्ध दोनोंके सिद्धान्तोंका संग्रहकर उनका ऐक्य प्रदर्शन कर रहा हूँ। मायावादका जीवन किस श्रेणीकी विचारधारामें किस तरह पुष्ट होकर क्रमशः वृद्धिप्राप्त हुआ है, यही यहाँपर पाठकोंके सामने निवेदन करनेका विषय है। प्रकृति ही माया है अथवा मायाका अङ्ग है। अतः बुद्धके प्रकृतिवादको मायावाद कहनेसे कोई विशेष पार्थक्य नहीं होता। 'बुध' धातुके कर्त्तृवाच्यमें 'क्त' होने पर 'बुद्ध' शब्द निष्पन्न होता है। बुध धातुसे बोध या ज्ञानका लक्ष्य होता है। 'माया' के गर्भमें जिस बुद्धका अर्थात् ज्ञानका आविर्भाव होता है, उसे मायावाद कहते हैं। वास्तवमें गौतमके

आविर्भावके बादसे ही मायावाद एक विशिष्ट रूप धारणकर जगतमें प्रकाशित और प्रचारित हुआ है। **बौद्ध–युगके पूर्वका अद्वैतवाद आधुनिक बुद्ध और शंकरके अद्वैतवाद या मायावादसे सम्पूर्ण पृथक् था।** जैसा भी हो, यहाँ शंकर और बौद्धमतका ऐक्य प्रदर्शन ही हमारा कर्त्तव्य है। 'जगत्', 'ब्रह्म', 'शून्य', 'मोक्षका उपाय' और 'ब्रह्म तथा शून्यका एकत्व' आदि विषयोंके सम्बन्धमें बौद्ध और शङ्कर मतमें मूलतः कोई पार्थक्य नहीं है—नीचे यही प्रदर्शित किया जा रहा है।

बौद्धमतमें जगत् मिथ्या है

बौद्धमतमें जगत् एक शून्यत्‌तत्त्व है। जगत्‌का आदि असत् अर्थात् शून्य है तथा अन्त भी असत्-स्वरूप शून्य है। जिसका आदि और अन्त असत् या शून्य है, उसका मध्य भी असत् या शून्य ही होगा। उनके मतमें काल किसी भी रूपमें स्वीकृत नहीं है। शून्य ही आदि और शून्य ही अन्त माना जाता है। 'अतीत' शून्य है, 'भविष्य' भी शून्य है तथा दोनोंका मध्यवर्ती 'वर्त्तमान' भी शून्य है। वे कहते हैं—"वर्त्तमान नामक कोई भी काल नहीं—वह अतीत एवं भविष्यका ही नामान्तर है। कोई भी वाक्य बोलनेसे वह पूर्वतक भविष्य है तथा बोलनेके साथ-ही-साथ वह अतीत हो जाता है। अतः 'वर्त्तमान' नामक किसी भी कालका अस्तित्व ढूढ़नेपर भी नहीं पाया जाता।" इस युक्तिका अवलम्बनकर बौद्धवादी यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि वर्त्तमान प्रत्यक्ष जगत्‌का भी अस्तित्व नहीं है। हमारा कहना है—'राम जीवित है'—यह कहनेसे क्या रामका अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता? राम नामका कोई भी व्यक्ति नहीं है—क्या यही कहना होगा? ऐसा होनेसे 'वर्त्तमान' कालको अस्वीकार करनेकी युक्ति देनेवाला वर्त्तमान रहकर जो युक्ति प्रदर्शित करता है, उस युक्ति और उस व्यक्ति—दोनोंको भी अस्वीकार करना होगा। वस्तुतः वर्त्तमान काल है, इसीलिये भूत और भविष्यकी सत्ताकी उपलबिध होती है। जैसा भी हो, बौद्धमतमें जगत्‌की त्रिकाल मिथ्यता ही प्रतिपन्न होती है, आचार्य शङ्करने भी यही मत ग्रहण किया है—यह पीछे दिखलाया जाएगा।

शंकर–मतमें भी जगत् मिथ्या है

आचार्य शंकरने भी बुद्धदेवका पदाङ्क अनुसरणकर जगत्‌का कारण त्रिकाल शून्यस्वरूप एक तत्त्वको स्वीकार किया है। उसका नाम अविद्या

है। **यह अविद्या सत् और असत्से विलक्षण एक अनिर्वचनीय तत्त्व है** अर्थात् अविद्या न तो सत् है, न असत्; इन दोनों से विलक्षण होनेसे उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। श्रीशंकरने अपने 'अज्ञान बोधिनी' ग्रन्थमें जगत्के सम्बन्धमें जो लिखा है, उसकी आलोचना करनेसे इस विषयकी सत्यताकी उपलब्धि की जा सकती है। उसका आठवाँ वाक्य इस तरह है—

"भो भगवन्! यद् भ्रम मात्रसिद्धं तत् किं सत्यम्? अरे यथा इन्द्रजालं पश्यति जनः व्याघ्रजलतड़ादि असत्यतया प्रतिभाति किम्? इन्द्रजालभ्रमे निवृत्ते सति सर्वं मिथ्येति जानाति। इदन्तु सर्वेषामनुभवसिद्धम्।"

उक्त वाक्योंमें उन्होंने जगत्को भ्रममात्र एवं इन्द्रजालकी तरह सम्पूर्ण मिथ्या कहा है। 'निर्वाण-दशक' के छठे श्लोकमें भी **"न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वे।"** इत्यादि वाक्योंमें उन्होंने भी बुद्ध की तरह जगत्का अस्तित्व अस्वीकार किया है। वे और भी कहते हैं—

"आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपेण विमोहात्।
निद्रामोहात् स्वप्नवत् तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम्॥"

(आत्मपञ्चक—३य श्लोक)

अर्थात् 'तन्न सत्यं स्वप्नवत्'—विश्व सत्य नहीं है, यह असत् और स्वप्नकी तरह मिथ्या है। जगत्का अस्तित्व निद्राकालके स्वप्नकी तरह केवल प्रतीत होता है। वास्तवमें यह सत्य नहीं है।

बुद्धने कहीं कहीं पर विश्वको 'संस्कार' विशेष कहा है। आचार्य शंकरने ऐसा कहा है कि यह स्वप्नकी तरह केवल प्रतिभात होता है। वास्तवमें स्वप्न और संस्कार एक ही धारणाके ज्ञापक हैं; क्योंकि स्वप्न और संस्कार दोनों ही कल्पनासे उत्पन्न होते हैं। जहाँ अकल्पित वस्तु स्वप्नमें दृष्ट होती है, वहाँ भी संस्कार ही मूल कारण है। दार्शनिक पण्डितोंका यही मत है। शंकरने यद्यपि वेदान्त सूत्रके भाष्यमें बौद्धोंके 'संस्कारवाद'के प्रति आक्रमण किया है, तथापि सूक्ष्मरूपसे विचारकर देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी स्वप्न-तुल्य जगत्-प्रतीति और संस्कारवाद दोनों एक ही हैं—केवल शब्दमात्र पृथक् पृथक् हैं।

आचार्य शंकरने जगत्के कारण अविद्याका परिचय देते समय सत्-असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयत्वकी बात जिस तरहसे कही है, उसका बुद्धके त्रिकाल शून्यत्वके साथ कुछ भी भेद नहीं है। शुक्ति और रजतके उदाहरणके द्वारा वे कहते हैं कि शुक्तिमें रजतका ज्ञान अविद्या या अज्ञानके

द्वारा उत्पन्न होता है। अतः यह रजतज्ञान प्रातिभासिक मात्र है। प्रातिभासिक वस्तु तब तक (जब तक अविद्याकी स्थिति रहती है) स्थायी होती है, बौद्ध मतमें यह केवल क्षणिक है। अर्थात् शुक्तिमें रजतका जो तात्कालिक ज्ञान होता है, वह केवल अज्ञान है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान—इन तीनों कालोंमें उसका अस्तित्व नहीं रहनेसे उक्त अज्ञान या अविद्या सत् नहीं, बल्कि केवल मिथ्या है। माननीय राजेन्द्रनाथ घोष महोदयने आचार्य शंकरका मत व्यक्त करते हुए आश्चर्यजनक वाक्योंका आवाहन किया है—

''जिसका अस्तित्व नहीं है, वह प्रतिभात होता है, जैसे—जगत् और जिसका अस्तित्व है वह प्रतिभात नहीं होता, जैसे—ब्रह्म।'' उक्त वाक्य बौद्धमतकी प्रतिध्वनिमात्र है। बौद्ध ज्ञानश्री कहते हैं, *''यत् सत् तत् क्षणिकम्''* अर्थात् जो सत्य रूपसे प्रतीयमान होता है, वही क्षणिक या तात्कालिक है, अतः मिथ्या है। आचार्य शंकरने अपने 'अपरोक्षानुभूति' नामक ग्रन्थके ४४वें श्लोकमें बुद्धके क्षणिकवादकी प्रतिध्वनि करते हुए कहा है—

'रज्जुज्ञानात् क्षणेनैव यद्वद् रज्जुर्हि सर्पिनी।'

अर्थात् रज्जुमें सर्पभ्रमके द्वारा जो अनुभूति होती है, **वह भ्रान्तिमय होनेपर भी क्षणिक है। अतः जगत्‌रूप जो भ्रान्ति होती है, वह भी क्षणिक है।** जगत्‌के त्रैकालिक सत्य-शून्यत्वकी तात्कालिकता स्वीकार करनेसे बुद्धके जगद्व्यापारमें आदि और अन्तमें असत्‌रूप विश्वके त्रिकालशून्य क्षणिकत्वके साथ क्या अन्तर रहा? सुधी पाठकवर्ग ही विचारकर देखेंगे।

ब्रह्म और शून्य

जगत्‌के सम्बन्धमें बुद्ध और आचार्य शंकरका एक ही सिद्धान्त है, मैंने पाठकोंसे यह निवेदन किया है। जगत् यदि अस्तित्वहीन, मिथ्या अथवा क्षणिक और प्रातिभासिक हो, तो सत्य और नित्य वस्तु क्या है?—यही यहाँ विचार करनेका विषय है। अद्वयवादी बुद्धका शून्य ही उनका सत् और नित्य है अर्थात् शून्यज्ञान ही चरम ज्ञान है। दूसरी तरफ ब्रह्मवादी शंकरका ब्रह्म ही सत् और नित्य है अर्थात् ब्रह्मज्ञान ही चरम ज्ञान है। पहले कहा गया है कि शंकरके मतसे **'जिसकी प्रतीति नहीं वही सत् है'** और बुद्धने भी प्रतीतिहीन वस्तुको शून्य या सत् कहा है। शंकर उसे 'ब्रह्म' शब्दके द्वारा समझाते हुए शून्यके अतिरिक्त और अधिक क्या बतलाया

है—पाठकवर्ग यह विचार करेंगे। हमारे विचारसे **शून्यकी धारणाको सम्पूर्ण रूपसे सुरक्षित रखकर उन्होंने 'ब्रह्म' शब्दके द्वारा 'शून्य' शब्दको केवल भाषान्तरित किया है।** शून्यके सम्बन्धमें बौद्ध लोगोंका जो कुछ कहना है, शंकरने भी ब्रह्मके विषयमें उसकी प्रतिध्वनि मात्र की है। अतः शून्य और ब्रह्ममें किसी प्रकारका पार्थक्य नहीं दीखता। मैं दो-एक प्रमाण उद्धृतकर उक्त सिद्धान्तकी पुष्टि कर रहा हूँ।

बुद्धका शून्यवाद

प्रज्ञापारमिता सूत्र (बौद्धोंका एक प्रामाणिक ग्रन्थ) के सोलहवें सूत्रमें भी इसी प्रकार देखा जाता है—

''सुदुर्वोधासि मायैव दृश्यसे न च दृश्यसे।''

अर्थात्, तुम (शून्य) अतिशय दुर्बोध हो और कभी मायाकी तरह दृष्टिगोचर होते हो, तो कभी नहीं भी होते।

उक्त ग्रन्थके द्वितीय सूत्रमें लिखा है—

''आकाशमिव निर्लेपां निष्प्रपञ्चां निरक्षराम्। यस्तां पश्यति भावेन स पश्यति तथागतम्।''

अर्थात्, जो तुमको आकाशकी तरह अर्थात् शून्यकी तरह निर्लेप, निष्प्रपञ्च और निरक्षर रूपसे दर्शन करता है, वह 'तथागत' अर्थात् शून्यत्वको प्राप्त होता है।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताके द्वितीय विवर्त्तमें ऐसा लिखा गया है—

''सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमाः स्वप्नोपमाः

** * *प्रत्यग्बुद्धोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः।*

प्रत्यग् बुद्धत्वमपि। मायोपमं स्वप्नोपमम्। सम्यक् सम्बुद्धोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः सम्यक् सम्बुद्धत्वमपि मायोपमं स्वप्नोपमम्।''

अर्थात्, सुगत बुद्ध देवपुत्रोंको कहते हैं—"समस्त धर्म ही माया और स्वप्नकी तरह हैं। प्रत्यक् बुद्ध, सम्यक् सम्बुद्ध एवं उन-उनके सभी धर्म ही माया और स्वप्नकी तरह हैं।"

सर्वदर्शन-संग्रह नामक ग्रन्थमें सायनमाधवने बौद्ध-दर्शन वर्णनके प्रसङ्गमें १५ वें वाक्यमें इस प्रकार लिखा है—

''माध्यमिकास्तावदुत्तम प्रज्ञा इत्थमचीकथन्। भिक्षुपाद प्रसारण-न्यायेन क्षणभङ्गाद्यभिधानमुखेन स्थायित्वानुकूलवेदनीयत्वानुगत सर्वसत्यत्वभ्रमव्यावर्त्तनेन

सर्वशून्यतायामेव पर्यवसानम्। अतस्तत्त्वं सदसदुभयानुभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यमेव।''

माध्यमिक उत्तम बुद्धिवाले है ऐसा कहा है। भिक्षुपाद फैलानेवाले न्यायसे क्षणभंग आदिके द्वारा स्थायित्व तथा अनुकूलवेदनीयत्वके अनुगत, सर्वसत्यत्वभ्रमको दूर करके सर्वशून्यतावादमें ही सबका समापन है। अतः तत्त्वतो है—सत् और असत् सदसत् आदि चारों कोठिसे मुक्त शून्य न।

उक्त ग्रन्थके २९वें वाक्यमें भी शून्यके सम्बन्धमें ऐसा लिखा गया है—

'केचन बौद्धा बाह्येषु गन्धादिषु आन्तरेषु रूपादि-स्कन्धेषु सत्स्वपि तत्रानास्थामुत्पादयितुं सर्वं शून्यमिति प्राथमिकान् विनेयानचीकथत्।''

अर्थात्, किसी किसी बौद्धमतावलम्बीने बाह्य वस्तु गन्ध, आन्तरिक और रूपादि स्कन्धमें, यहाँ तक कि 'सत्' में भी अश्रद्धा उत्पन्न करानेके लिए समस्त शून्य है—ऐसा प्राथमिक श्रेणीके लोगोंके लिए कहा है।

शाक्य सिंह बुद्धके सम्बन्धमें भी 'ललित विस्तार' बौद्ध ग्रन्थके २१ वें अध्यायमें ऐसा लिखा गया है—"शाक्य सिंह बुद्धने 'शून्य' और 'नैरात्मवाद' धनुष द्वारा सांसारिक क्लेश-रिपुका विनाश किया है।—*समर्थ धनुर्गृहीत्वा शून्य-नैरात्मवादिने क्लेशरिपुन् निहत्वा।"* उपर्युक्त बौद्धग्रन्थोंके प्रमाणों द्वारा यह जाना जाता है कि महानिर्वाणरूप शून्यवस्तु आकाशकी तरह निरक्षर, निष्प्रपञ्च है एवं जो प्रपञ्च अर्थात् कारणरूप शून्यका कार्य या धर्मज्ञापक हैं, वे सभी शून्य हैं तथा स्वप्न और मायाकी तरह हैं। प्रपञ्च क्षणिक होनेपर भी इसका मूल कारण 'शून्य' है। प्रज्ञापारमिता सूत्रमें कहा गया है—"आम्रका आम्रत्व गुण दूर हो जानेसे वह शून्यमें ही पर्यवसित हो जाता है।" शंकरका निर्गुण ब्रह्मवाद इसीका नामान्तर है। बुद्धका कहना है—"जिसमें गुण या कार्य नहीं, वह शून्य है।" शंकरका भी कथन है—"जिसमें गुण नहीं, वही ब्रह्म है।"

शंकराचार्यका ब्रह्मवाद

सम्प्रति बुद्धके शून्यवादके साथ आचार्य शंकरके ब्रह्मवादकी एकता दिखलायी जा रही है। अतः उल्लिखित प्रमाणोंके साथ तुलनाकर पढ़ना होगा। अपरोक्षानुभूति नामक ग्रन्थके ४५वें श्लोकमें श्रीपाद शंकरने कहा है—

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोन्ये न विद्यते।
तस्मात् सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत्।।

४६ श्लोकमें—

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत्।।

९४ श्लोकमें—

उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्येव दृश्यते।
अज्ञानञ्चेति वेदान्तास्तन्नष्टैव का विश्वता।।

अर्थात्, प्रपञ्चका उपादान ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है (४५)। परमात्मा ब्रह्मसे ही भूतसमूह उत्पन्न हुए हैं। अतः ये सब (प्रपञ्चभूत) भेदसमूह ब्रह्म हैं—ऐसा निर्णय करना चाहिए (४९)। जिस प्रकार मिट्टीके पात्रका उपादान जल-मिट्टी आदि है, उसी प्रकार प्रपञ्चका उपादान अज्ञान है। वेदान्तमें (?) ऐसा कहा गया है कि उस अज्ञानके नष्ट होनेपर विश्वत्व या प्रपञ्चत्वकी भावना ही कहाँ रहती है (९४)? अतएव ऐसा देखा जाता है कि शंकरके मतसे ब्रह्म जगत्का मूल कारण है। ब्रह्मसे ही सम्पूर्ण भूतसमूहकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्म ही अज्ञानके कारण जगत्के रूपमें प्रतिभात हो रहा है। इस हेतु अर्थात् अज्ञानके विनाश या दूर होनेपर ही दृश्यत्व (भूतसमूह) विनष्ट होकर ब्रह्ममें पर्यवसित हो जायेगा अर्थात् ब्रह्म हो जायेगा। विश्व ही द्वैत उत्पत्तिरूप भय-क्लेश आदिका आकर है। बुद्धदेवने अपने शून्यवादरूप अस्त्रसे विश्व-क्लेशको विनष्ट करनेकी चेष्टा की है एवं आचार्य शंकरने भी ब्रह्मवादरूप अस्त्रसे विश्व-क्लेशको ध्वंस करनेका प्रयास किया है। संसार-क्लेश दूर करनेके हेतुभूत जैसे शंकरका ब्रह्मवाद है, वैसे ही बुद्धका शून्यवाद है। जगत्की प्रतीति नष्ट होनेपर एकमें शून्य और दूसरेंमें ब्रह्म रह जाता है। अब जगत्-प्रतीति नष्ट करनेके उपायके सम्बन्धमें बौद्ध और शंकरके अनुयायियोंका परस्पर क्या विचार है, उसकी कुछ कुछ समालोचनाकी आवश्यकता है एवं दोनों मतोंका ऐक्य कहाँ है, यह भी दिखलाना आवश्यक है।

बौद्धमतमें मोक्षका उपाय

मोक्षके उपाय अर्थात् जगत्के विनाश करनेकी चेष्टाके सम्बन्धमें 2बौद्धोंका कथन है—

''तत् द्विविधं तदिदं सर्वं दुःखं दुखायतनं दुःखसाधनञ्चेति भावयित्वा तन्निरोधोपायं तत्त्वज्ञानं सम्पादयेत्। अतएवोक्तं दुःख-समुदाय-निरोध-मार्गाश्चत्वारः आर्यस्य बुद्धाभिमतानि तत्त्वानि। तत्र दुःखं प्रसिद्धं समुदाय दुःख-कारणं तद्द्विविधं प्रत्ययोप-निबन्धनो हेतूपनिबन्धनश्च।''—सायन माधव

सारे विश्वको दुःखमय, दुःखायतन एवं दुःखदायक समझकर उसके निरोधके उपायस्वरूप तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए चेष्टा करनी चाहिए। अतएव दुःख समुदायके निरोधके ४ मार्ग हैं। किन्तु, आर्य बुद्धके विचारसे सभी तत्त्व दुःख निरोधके मार्ग हैं। दुःख किसे कहते हैं, यह तो सभी जानते हैं। किन्तु, सभी दुःखोंका कारण 'विश्व' ही है एवं यह कारण दो प्रकारका होता है, यथा—प्रत्ययोपनिबन्धन और हेतूपनिबन्धन।

प्रज्ञापारमिता सूत्र १७ में लिखा गया है—*"मार्गस्तेमेको मोक्षस्य नास्तन्य इति निश्चयः"* अर्थात् प्रज्ञापारमिताको लक्ष्यकर उसका स्तव कर रहे हैं—"तुम्हीं एकमात्र मोक्षके मार्ग हो, दूसरा नहीं; यह निश्चित है।"

बौद्ध महायान शाखाके अनेक ग्रन्थोंमें प्रज्ञापारमिताको मोक्षका एकमात्र उपाय बतलाया गया है। शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताके प्रारम्भमें ही इस प्रकार लिखा गया है—

"नैव तेन विना मोक्षं तस्मात् श्रोतव्यं आदरात्।"

अर्थात् प्रज्ञापारमिताके अतिरिक्त मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए आदरपूर्वक उसका श्रवण करना चाहिए। उक्त ग्रन्थमें अन्यत्र भी उक्त वाक्यके पृष्ठपोषक वाक्य मिलते हैं। यथा—

या सर्वज्ञतया नयत्युपसमं शान्त्यैषिणः श्रावकान्।
या मार्गज्ञतया जगद्धितकृपा लोकार्थ सम्पादिका।।
सर्वकारमिदं वदन्ति मुनयो विश्वं यया सङ्गता।
तस्मै श्रावक–बोधसत्त्वगणिनो बुद्धस्य मात्रेनमः।।

अर्थात्, जिनकी कृपासे सर्वज्ञता प्राप्त होती है, वे प्रज्ञापारमिता ही शान्तिकामी श्रोताओंके समस्त संसार-क्लेश दूर कर देते हैं। वे जानते हैं कि किस मार्गसे चलनेसे मोक्ष मिल सकता है। अतएव वे ही जगत्का कल्याण किया करते हैं। उस श्रावकबोधिसत्त्व बुद्ध प्रज्ञापारमिताको नमस्कार करता हूँ।

उक्त बौद्धशास्त्रोंके प्रमाणों द्वारा देखा जाता है कि मोक्ष अर्थात् शून्यत्व लाभ करनेका उपाय तत्त्वज्ञान या प्रज्ञापारमिता है। प्रज्ञापारमिता कहनेसे बौद्ध लोगोंका जो विचार है, उसे संक्षेपमें निवेदित किया जा रहा है। प्रज्ञापारमिता सूत्रके प्रथम सूत्रमें प्रज्ञापारमिताका स्वरूप निर्णय करते हुए लिखा गया है—

निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते।
या त्वं सर्वानवद्याङ्गि निरवद्यैर्निरीक्षसे।।

अर्थात्, हे प्रज्ञापारमिते! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। तुम निर्विकल्प और अमित हो। तुम्हारा अङ्ग अनवद्य अर्थात् निर्दोष है। अतः निर्दोष व्यक्ति ही तुम्हें देखनेमें समर्थ होते हैं। उक्त श्लोकके प्रत्येक शब्दको लेकर विचार करनेसे देखा जाता है कि शङ्करने ब्रह्मप्राप्तिके लिए जिन उपायोंका निर्देश किया है, वे प्रज्ञापारमिताके साथ एक ही जैसे (अभिन्न) स्थिर होते हैं। बौद्धोंका और भी कहना है कि संसार-क्लेशका पूर्वोक्त 'प्रत्ययोपनिबन्धन' और 'हेतूपनिबन्धन' इन दोनों कारणोंका निरोध करनेसे मुक्ति होती है।

"तदुभय निरोधकरणानन्तरं विमलज्ञानोदयो वा मुक्तिः तन्निरोधोपायोमार्गः स च तत्त्वज्ञानं तच्च प्राचीनभावनावलाद्भवतीति परमं रहस्यम्।।"—सायन माधव।

अर्थात्, उक्त दोनों कारणोंके निरोध होनेपर विमल ज्ञानका उदय होता है या मुक्ति होती है। जो उक्त दोनों कारणोंका निरोध करनेमें समर्थ होते हैं, वे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्राचीन भावनाके बलसे ही तत्त्वज्ञान अर्थात् प्रज्ञापारमिता प्राप्त होती है। यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य है। क्षणिक जगत्‌के या प्रातिभासिक रजतज्ञानके उक्त दोनों कारणोंका निरोध या विनाश कर सकनेसे शून्य-प्रज्ञा या ब्रह्म-प्रज्ञा उदित होती है। 'कारण' नष्ट होनेसे ही 'कार्य' का नाश हो जाता है—यह स्वतः सिद्ध है। अतएव बौद्ध मतमें शून्य प्राप्तिका उपाय जगत् प्रतीतिके कारणका नाश होना है एवं अमिता निर्विकल्पा-प्रज्ञा ही कारण नाश करनेका एकमात्र उपाय है।

आचार्य शंकरके मतानुसार मोक्षका उपाय

आचार्य श्रीपाद शंकरने मुक्तिका उपाय निर्देशित करनेके लिए 'केवलोऽहम्' शीर्षक नाम देकर एक पद्यकी रचना की है। उसका एक श्लोक उद्धृत किया जा रहा है—

ब्रह्मभिन्नत्वाविज्ञानं भवमोक्षस्य कारणम्।
येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्मसम्पद्यते बुधैः।।२।।

उनके ही द्वारा कृत अपरोक्षानुभूतिमें—

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयोयतः।।१०६।।

अर्थात्, ब्रह्मका (ब्रह्म और प्रपञ्चका) अभिन्नत्व ज्ञान ही भवमोक्ष अथवा संसार मोचनका कारण है। इसके द्वारा पण्डित व्यक्ति अद्वितीय आनन्दस्वरूप ब्रह्म सम्पादन किया करते हैं अर्थात् ब्रह्म लाभ करते हैं।।२।।

चिदात्माका अवलोकन करनेसे प्रपञ्चके रूपोंका त्याग हो जाता है। यह त्याग महद् व्यक्तियोंके लिए पूज्य है, इसी त्यागसे अतिशीघ्र मोक्षमय हुआ जाता है।।१०६।।

चिदात्माका अवलोकन या ब्रह्मसे अभिन्न चिन्तन आदि उपायोंके द्वारा ब्रह्मप्राप्ति या मोक्ष लाभ होता है। ब्रह्म-ज्ञान ही विश्वरूप अविद्याके विनाशका कारण बतलाया गया है। बुद्धकी प्रज्ञा और आचार्य शंकरका ब्रह्म-ज्ञान एक ही चीज है। प्रज्ञा और बह्ममें कोई पार्थक्य नहीं। ऐसा दिखलानेके लिए शारीरक भाष्य आदि अनेक ग्रन्थोंमें ऐतरेय उपनिषदका 'प्रज्ञानं ब्रह्म' मन्त्र उद्धृतकर सर्वत्र ही उक्त मतका अनुमोदन किया गया है। ऐतरेय उपनिषद् में अन्यत्र भी—'प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्', 'प्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा'—ऐसे मन्त्र देखे जाते हैं। उनका शंकरने जो भाष्य किया है तथा सायनाचार्य प्रभृति मनीषियोंने इनका अवलम्बनकर जो कुछ लिखा है, उससे जाना जाता है कि 'प्रज्ञान' शब्दका अर्थ 'निरूपाधिक चैतन्य' एवं 'प्रतिष्ठित' शब्दका अर्थ 'सर्व-जगत् रज्जुमें सर्पकी भाँति आरोपित' से है—*"प्रज्ञाने निरुपाधिक चैतन्ये पूर्वोक्तं सर्वं जगत् प्रतिष्ठं रज्ज्वां सर्ववदारोपितम्।"* अतः देखा जाता है कि श्रीशंकरपादने बुद्धकी प्रज्ञाको ही अङ्गीकारकर उसे निरूपाधिक चैतन्य-स्वरूप और उसीको रज्जुमें सर्पके आरोपकी भाँति क्षणिक जगत् कहा है। इसी प्रज्ञा या ब्रह्मज्ञान द्वारा क्षणिक या प्रातिभासिक तात्कालिक जगत् नष्ट होगा और शून्यरूप ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हो जायेगा। और भी कहते हैं—

कार्ये कारणता जाता कारणे न हि कार्यता।
कारणत्वं ततो गच्छेत् कार्याभावे विचारतः।।

(अपरोक्षानुभूति १३५)

कार्यमें कारणता रहती है, किन्तु कारणमें कार्यता नहीं रहती। अतः जगत्‌रूप कार्यकी क्षणिकता विचारपूर्वक उसका निरोध या अभाव होनेपर ब्रह्मरूप कारणत्व प्राप्त हो जाता है।।१३५।।

पुनः अन्यत्र—

कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात् कार्यं विवर्जयेत्।
कारणत्वं ततो गच्छेत् वशिष्ठं च भवेन्मुनिः।।

(अपरोक्षानुभूति १३९)

कार्यके भीतर कारणको देखकर पीछे कार्यका परित्याग करना चाहिए।

कार्य और कारण-इन दोनोंमें कार्य परित्यक्त होनेसे अवशिष्ट कारणत्व स्वयं प्रकाशित हो जाता है। यही कार्य-कारणका विचार है।।१३९।।

बौद्धोंके उदाहृत 'आम्रका आम्रत्व' विचारमें भी वही अवशेषरूपमें पाया जाता है। यहाँ पाठकवर्ग ही विचारकर देखें कि श्रीशंकरके कहे गये *'अवशिष्टं भवेत्'* वाक्यद्वारा शून्यका ही लक्ष्य होता है या नहीं। आम्रका आम्रत्व नष्ट होनेपर कुछ भी शेष नहीं रहता अर्थात् शून्य ही अवशिष्ट रहता है। अतः 'अवशिष्ट' शब्द द्वारा शंकरने प्रच्छन्नरूपसे बुद्धके शून्यको ही लक्ष्य किया है। अतएव मोक्षके उपायके सम्बन्धमें शंकरने बुद्धके मायावादसे प्रभावित होकर अपना मत स्थापन करनेकी चेष्टा की है—यह कहना शायद अन्याय नहीं होगा। मोक्षका उपाय निरूपण करनेके विषयमें भी बुद्ध और शंकरका एक ही मत है—यह स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है।

बौद्धमतमें शून्य और ब्रह्म

अब ब्रह्म और शून्यमें क्या भेद है, अथवा इनमें कुछ भेद है या नहीं—इसकी विवेचना की जा रही है। प्रज्ञापारमिता सूत्रके १९ वें श्लोकमें शून्य-तत्त्वरूप परम निर्वाणके सम्बन्धमें लिखा गया है—

शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुं निर्णिमित्तां निरञ्जनाम्।
सर्ववाग् विषयातीतां या त्वं क्वचिदनिश्रिता।।

उक्त श्लोकसे जाना जाता है कि शून्य-तत्त्व निर्निमित्त, निरञ्जन, अनिश्रित और वाणीसे अगोचर होनेसे कोई उसकी स्तुति भी करनेमें समर्थ नहीं है। मैंने पहले ही 'बौद्धोंका शून्यवाद' प्रसङ्गमें पाठकोंको शून्यवादका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

'आकाशाम् निर्लेपाम् निष्प्रपञ्चाम् निरक्षराम्'

'अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता' के १८ वें परिवर्त्तमें शाक्यसिंह बुद्धने सुभूतिके प्रति शून्यके जो लक्षण बतलाये हैं, वे इस प्रकार हैं—

ये च सुभूते शून्या अक्षयाऽपि ते।
या च शून्यता अप्रमेयता अपि सा।।

अर्थात् हे सुभूति, शून्य ही अक्षर है। जिसे शून्य कहा जाता है, वही अप्रमेय है। फिर उसी ग्रन्थ में कहते हैं—

"अप्रमेयमिति वा असङ्ख्येयमिति वा अक्षयमिति वा शून्यमिति वा अनिमित्तमिति वा अप्रनिहितमिति वा अनभिसंस्कार इति वा अनुत्पाद इति वा

अज्ञातिरिक्त वा अभाव इति विराग इति वा निरोध इति वा निर्वाणमिति।"

देवपुत्रोंके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उक्त ग्रन्थके द्वादश परिवर्त्तमें शून्यका लक्षण बतलाते हैं—

"शून्यमिति देवपुत्रा अत्र लक्षणानि स्थाप्यन्ते अनभिसंस्कार इत्युनुत्पाद इत्यनिरोध इत्यसंक्लेश इत्यव्यवदानमित्यभाव इति निर्वाणमिति धर्म धातुरिति तथातेति देवपुत्रा अत्रलक्षणानि स्थाप्यन्ते नैतानि लक्षणानि रूपनिश्रितानि।"

उक्त वचनोंसे विदित होता है कि अप्रमेय, असंघेय, अक्षय, अनिमित्त, अपनिहित, अनभिसंस्कार, अज, अजाति, अभाव, अनिश्रित, अनुत्पाद, अनिरोध, असंक्लेश, अव्यवदान, निर्निमित्त, निरञ्जन, निरोध, निर्वाण, निरवद्य, विराग और राग-विषयातीत—ये सब शून्य तत्त्वके लक्षण हैं। इन लक्षणोंको विशेषरूपसे ठीक-ठीक विचार करनेसे शङ्करके ब्रह्मतत्त्वका शून्यतत्त्वसे कुछभी भेद प्रतीत नहीं होता है। यहाँ तक कि आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मको शून्य बतलाया है। नीचे हम इसका प्रमाण दे रहे हैं।

शंकरके मतमें ब्रह्म और शून्य

श्रीशंकरके 'विवेक-चूड़ामणि,' 'अपरोक्षानुभूति,' 'ब्रह्मनामावलीमाला' आदि ग्रन्थोंको आद्योपान्त पढ़नेसे मालूम होता है कि उनमें उक्त शून्यके लक्षणोंको ही ब्रह्मका लक्षण माना गया है। इस प्रसङ्गमें श्रीशंकराचार्य द्वारा लिखे गये अधिक प्रमाणोंको उद्धृत करना लेख विस्तारके भयसे बेकार समझता हूँ। फिर भी सिद्धान्तकी सत्यताका प्रतिपादन करनेके लिए दो एक श्लोकोंको लिपिबद्ध किया जा रहा है—

द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैक वस्तुनि।
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः।।

(विवेकचूड़ामणि—४०२)

वाचो यस्मान्निवर्त्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते।
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः।।

(अपरोक्षानुभूति—१०८)

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमक्षरः।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।

(ब्रह्मनामावलीमाला—४)

ऊपरके श्लोकोमें निर्विकार, निराकार, निर्विशेष, निरवद्य, अव्यय, अक्षय आदि ब्रह्मके जो स्वरूपलक्षण बतलाये गये हैं, वे शून्यके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं अर्थात् ये सभी शून्यके लक्षण हैं। शून्यके लक्षणोंमें अभाव भी एक लक्षण है, वह द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि भावोंसे शून्य अभावको ही लक्षण करता है। इसके अलावा प्रातःस्मरणस्तोत्रके द्वितीय श्लोकमें 'यन्नेति नेति वचनैः' इत्यादि वचनोंसे उक्त शून्य लक्षणात्मक अभावको ही लक्ष्य किया जाता है। **जो शून्य, ''सर्ववाक्-विषयातीत'' है, वही ब्रह्म ''शब्दविवर्जित'' है। जिस ब्रह्मको लक्ष्यकर—''तद्वक्तुं केन शक्यते'' कहा जाता है, उस शून्यको ही बौद्धलोग भी ''शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुम'' कहते हैं। बौद्ध जिसे ''निरञ्जनाम्, निर्लेपाम्'' कहते हैं, शङ्कर भी उसीको ''निरञ्जनो निर्लेपो विगतक्लेशः'' इत्यादि कहते हैं** (मुण्डकोपनिषद्का तृतीय मुण्डक ४७ श्लोकका भाष्य द्रष्टव्य)। अब पाठकवर्ग स्वयं विचार करें कि शङ्करका ब्रह्मवाद और बुद्धका शून्यवाद दोनों एक है या नहीं?

अद्वयवादी और अद्वैतवादी

पूर्वोक्त आलोचनासे पता चलता है कि मायावादका जीवन बौद्ध-चिन्ताधारामें पुष्ट हुआ है। अमरकोषमें बुद्धदेवको **अद्वयवादीकी** संज्ञा दी गई है, एवं आचार्य शङ्कर भी **अद्वैतवादी** थे—यह सर्वमान्य है। निरपेक्ष होकर विचार करनेसे स्पष्ट बोध होता है कि अद्वयवाद और अद्वैतवादमें कुछ भी पार्थक्य नहीं है। फिर भी दोनों मतवादोंके विचारोंमें कुछ भेद प्रतीत होता है, उसकी कुछ आलोचना करनी आवश्यक है। **परिणाम-विचारसे** बुद्धने शून्यको असत्स्वरूप कहा है। उन्होंने और भी कहा है—"शून्यको शून्य ही समझो, अभाव समझो, निर्वाण समझो। और श्रावक तथा वोधिसत्त्व श्रेणी यदि उक्त शून्यको शून्यरूप न माने अथवा निर्वाणको एक गुणात्मक-विशेषअवस्था समझे, तो वह भी 'मायोपम स्वप्नोपम' है।"

परिणाम-विचारसे आचार्य शंकरने ब्रह्मको सत्-स्वरूप बतलाया है और दूसरी जगह आनन्द-स्वरूप तथा निर्वाण-स्वरूप भी कहा है। साधारण विचारसे दोनों मतोंकी परिभाषामें भेद देखे जाने पर भी वास्तवमें उनके भावों और विचारोंमें तनिक भी भेद नहीं—तनिक विचार करनेसे ही यह समझा जा सकता है। 'निर्वाण' शब्दसे शुष्कताशून्य-रसपूर्णताका बोध होनेसे

'निर्वाण' शब्दसे किसीको भी आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु, दोनोंने ही उनके अपने-अपने तत्त्वको अर्थात् शून्यको और ब्रह्मको 'निर्वाण'-स्वरूप बतलाया है। आचार्य शंकरने मुक्तिके बाद ब्रह्मके जिस आनन्दस्वरूप लक्षणको बतलाया है, विचारपूर्वक देखनेसे उक्त लक्षण निरर्थक प्रतीत होता है। क्योंकि उनके मतसे उसका प्रापक (पानेवाला) कोई नहीं है। अतएव प्राप्य और प्रापकके अभावमें यदि उसे 'निरानन्द-स्वरूप' ही कहा जाय तो इसमें दोष ही क्या है?

श्रीपाद शंकर कहते हैं—

भाववृत्त्याहि भावत्वं शून्यवृत्त्याहि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्याहि ब्रह्मत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्।।

(अपरोक्षानुभूति—१२९)

अर्थात् भाववृत्ति द्वारा भाववस्तु (वह वस्तु जिसकी सत्ता है) तथा शून्यवृत्ति द्वारा शून्यस्तु (जिसकी सत्ता नहीं है) प्राप्त होती है और ब्रह्मवृत्तिका अवलम्बन करनेसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त वचनोंसे आचार्य शंकरने शून्यवादकी अपेक्षा ब्रह्मवादका वैशिष्ट्य स्थापन करनेकी चेष्टा की है, किन्तु विचारपूर्वक देखनेसे ऊपर कहे गये वैशिष्ट्यकी रक्षा नहीं होती। वह केवल कहनेकी बात है। उक्त श्लोकमें इस बातका संकेत पाया जाता है कि भावरूप ब्रह्म-वृत्तिका अभ्यास करनेसे सत्स्वरूप और भावस्वरूप ब्रह्मत्वकी प्राप्ति होती है तथा अभावरूप शून्यवृत्ति स्वीकार किये जानेसे असत्स्वरूप शून्य ही प्राप्त होता है। अब सत्-वस्तु ब्रह्म और असत्-वस्तु शून्यमें भेद क्या है, इसपर विचार करना आवश्यक है। यथार्थमें दोनोंमें भेद होने या न होनेमें लाभ या हानि किसकी है? द्रष्टा-दृश्य-दर्शन—इन भावोंसे शून्य एक वस्तुको भाव या सत् कहनेमें अथवा अभाव या असत् कहनेमें भेद क्या है, इसका अनुसन्धान करने पर भी क्या कुछ मिलेगा? बहुतसे ऐसे पदार्थ, जिनका अभी तक आविष्कार नहीं हुआ है, उनकी सत्ता स्वीकार करनेसे जिस प्रकार जीवोंका उनसे कुछ भी उपकार या अपकार नहीं होता, उसी प्रकार बहुतसे ऐसे पदार्थोंका आविष्कार किया जाय, जिनका कोई अस्तित्व ही न हो, तो उससे भी कुछ लाभ नहीं है—यह वैज्ञानिकोंका विचार है। जिस वस्तुका पारमार्थिक दृश्यत्व नहीं है और उसका कोई दर्शक भी नहीं है तो ऐसे स्थलपर उस वस्तुको सत् कहा जाय अथवा असत्—बात एक ही है।

यहाँ दार्शनिक कविकुलचूड़ामणि श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीने अपने श्रीचैतन्य चरितामृतमें जो लिखा है, वह आलोच्य है, यथा—

वेद न मानिया बौद्ध हय त' नास्तिक।
वेदाश्रये नास्तिक्य-वाद बौद्धके अधिक।।

(चै॰ च॰ म॰ ६/१६८)

उन्होंने बुद्ध और शंकराचार्यकी तुलनाकर यह बताया है कि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, यहाँ तक कि शंकर ही और अधिक कठोर नास्तिक हैं। क्योंकि साधारण लोग सहज ही शंकरको वैदिक मानकर या आस्तिक मानकर नास्तिक हो जाएँगे। यही कलिकाल स्थापनका वैशिष्ट्य है।

मायावादको बौद्धवादकी संज्ञा न देकर उसे छिपानेका कारण

अद्वयवाद और अद्वैतवादमें कोई विशेष भेद नहीं रहने पर भी आचार्य शङ्करने अपने मतवादका नाम बौद्धवाद नहीं रखा—यद्यपि वे भीतर-ही-भीतर इस बातको पूर्णतया जानते थे कि वे प्रकृत बौद्ध हैं। उनके आत्म-परिचय छिपानेका विशेष कारण था। वह कारण, उनके दार्शनिक विचारोंका भेद होना नहीं है, बल्कि भगवान्‌का आदेश ही उसका मूल कारण है। आचार्य शिरोमणि श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीने उनके सम्बन्धमें इस विषयपर प्रकाश डाला है—

आचार्येर दोष नाहि ईश्वर-आज्ञा हैल।
अतएव कल्पना करि नास्तिक शास्त्र कैल।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

अर्थात् आचार्य शङ्करने काल्पनिक नास्तिक शास्त्रोंकी रचनाकर उनसे मायावादका प्रचार किया है—इसमें आचार्यका तनिक भी दोष नहीं है। उन्होंने भगवान्‌की आज्ञासे ऐसा किया था। भगवान्‌की आज्ञा थी—

"माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरा"

अर्थात् कल्पित शास्त्रोंकी रचनाकर उनके द्वारा नास्तिक मतवादका प्रचार करो, जिससे मनुष्य हमसे (भगवान्‌से) विमुख होकर उत्तरोत्तर सृष्टिका विस्तार-कार्य करते रहें।

इस प्रसंगमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजीने अपने 'जैव-धर्म' नामक ग्रन्थमें जो लिखा है उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"श्रीशंकराचार्यका नाम सुनकर परमहंस बाबाने उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर बोले—'महाशय, शङ्करः शङ्करः साक्षात्' इस बातको सदा स्मरण रखियेगा। शङ्करजी वैष्णवोंके गुरु हैं। इसी कारण महाप्रभुजीने आचार्य कहकर उनका उल्लेख किया है। श्रीशङ्कराचार्य स्वयं वैष्णव थे। जिस समय वे भारतमें उदित हुए थे, उस समय उनके समान एक गुणावतारके आविर्भूत होनेकी बहुत बड़ी जरूरत थी। भारतमें वेद-शास्त्रकी आलोचना और वर्णाश्रम धर्मके क्रियाकलाप बौद्धोंके शून्यवादके चक्करमें पड़कर शून्यप्राय हो गये थे। शून्यवाद नितान्त निरीश्वर है। उसमें जीवात्माका तत्त्व कुछ-कुछ स्वीकृत होने पर भी वह धर्म बिल्कुल ही अनित्य है। उस समय ब्राह्मण लोग प्रायः बौद्ध-धर्म ग्रहणकर वैदिक धर्मका परित्याग करते जा रहे थे। असाधारण शक्तिसम्पन्न शङ्करके अवतार श्रीशङ्कराचार्यने उदित होकर वेदोंके सम्मानकी स्थापनाकी और **शून्यवादको ब्रह्मवादमें परिणत कर दिया।** यह कार्य असाधारण था। भारतवर्ष इस महान् कार्यके लिये श्रीशङ्कराचार्यका सदा ऋणी रहेगा। सभी कार्योंका जगत्में दो प्रकारसे विचार होता है। कुछ कार्य तात्कालिक होते हैं और कुछ सार्वकालिक। शङ्कराचार्यका यह कार्य तात्कालिक था। उसके द्वारा अनेक सुफलोंका उदय हुआ है। शङ्कराचार्यने जो भित्ति स्थापन किया उसी भित्ति के ऊपर श्रीरामानुजाचार्य आदि आचार्योंने विशुद्ध वैष्णव-धर्मका महल खड़ा किया है। अतएव शङ्करावतार वैष्णव-धर्मके परम बन्धु और एक प्रागुदित आचार्य हैं।"

(जैव-धर्म द्वितीय अध्याय)

भगवानकी आज्ञा पालन करनेवाले आचार्यके चरण-कमलोंमें मैंने अपराध नहीं किया है, बल्कि मैंने विद्वानोंके सामने इस बातको उपस्थित करनेकी चेष्टा की है कि आचार्य शङ्करने भगवानकी आज्ञाको पूर्णतया पालन करनेके उद्देश्यसे लुक-छिपकर शून्यवाद या बौद्धवादका ही अवलम्बन किया था।

बुद्धदेवके प्रति आचार्य शङ्करका मनोभाव कैसा था—यह उनके दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्रको पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है। इन्होंने गुप्तरूपसे बुद्धका स्तव किया है—

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः।।

उपरोक्त श्लोकसे अनुमान लगाया जा सकता है कि बुद्धदेवके प्रति उन्होंने कितनी श्रद्धा अर्पित की है। 'चित्र'—शब्दसे अत्यन्त सम्मानसूचक मुग्धभावका बोध होता है। वट-वृक्षके नीचे गुरु-शिष्य मौन होकर बैठे हैं। शिष्य सभी-के-सभी वृद्ध हैं और गुरु युवक। गुरु मौनभावसे धर्मव्याख्या कर रहे हैं, उसीसे शिष्यका सन्देह दूर हो रहा है।

ऊपरके श्लोकके पूर्ववर्ती श्लोकोंकी आलोचना करनेसे भी ऐतिहासिक सत्यरूपसे ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त दोनों श्लोक शाक्यसिंह बुद्धके लिए ही प्रयुक्त हुए है। इसके अतिरिक्त शून्यके सम्बन्धमें नृसिंहतापनी उपनिषद्के निम्नलिखित वचनको देखकर आचार्यने महानन्दके साथ शून्य-तत्त्वको ही ब्रह्मतत्त्व स्वीकार किया है। उक्त वचन इस प्रकार है—

आनन्दघनं शून्यम्, ब्रह्म-आत्मप्रकाशं शून्यम्।

(नृसिंहतापनी उः ६/२, ४)

अर्थात्, शून्य ही आनन्दस्वरूप है, शून्य ही ब्रह्मस्वरूप है।

बौद्धोंने भी उक्त मंत्रकी प्रतिध्वनि करके अर्थात् उक्त मंत्रके अनुरूप 'मिलिन्दपञ्चह' ग्रन्थमें शून्यरूप निर्वाणको *''एकान्त सुखम्''*, *''विमुक्त सुखं पटिसम्वेदि''* इत्यादि वचनों द्वारा एकान्त-सुख-स्वरूप, विमुक्त-सुख-स्वरूप कहा है। बौद्ध अमरसिंहने निर्वाणको निःश्रेयस अमृत कहकर वर्णन किया है—***''मुक्ति कैवल्य निर्वाणं श्रेयोनिःश्रेयसामृतम्।''*** उसके टीकाकार कहते हैं—***''निर्वातेः आत्यन्तिक-दुःखोच्छेदे-भावेक्त''।*** अतएव आनन्दघन शून्यको, आत्मप्रकाश शून्यको, ब्रह्मस्वरूप शून्यको बौद्ध लोग भी आत्यन्तिक दुःखच्छेदरूप, अनन्त सुखस्वरूप, निःश्रेयस अमृतस्वरूप और विमुक्त सुखस्वरूप जानते हैं। अतः देखा जाता है कि बौद्धलोग जिसे शून्य कहते हैं, शङ्करने भी उसीको ब्रह्म कहा है।

शंकर अपनी ही युक्तियों द्वारा बौद्ध प्रमाणित होते हैं

हमने शङ्करको प्रच्छन्न बौद्ध कहनेके लिए पहले ही दिखलाया है कि जगत्के विचारमें बौद्धोंका क्षणिकवाद और शङ्करका प्रातिभासिक या तात्कालिकवाद एक ही चीज है, मोक्षके अभिधेय (उपाय) के विचारमें बन्धनके कारणोंका नाश करनेके लिए बौद्धोंकी प्रज्ञापारमिता और शंकरका ब्रह्मज्ञान और मोक्षरूप प्रयोजन अर्थात् फलके विचारमें बौद्धोंका शून्यत्व तथा शङ्करका ब्रह्मत्व आदि विचारसमूह एक ही हैं। कतिपय पुराणोंमें

भी ऐसा देखा जाता है कि शङ्कर मायावादी और प्रच्छन्न बौद्ध हैं। अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके लोग पुराणोंके उन वचनोंको प्रक्षिप्त बतलाते हैं और मनगढ़न्त युक्तियोंके आधारपर यह कहना चाहते हैं कि वे न तो बौद्ध हैं और न मायावादी ही। उनमेंसे कोई-कोई उन वचनोंको प्रक्षिप्त न कहकर सत्य मानकर एक आश्चर्यजनक ऐतिहासिक युक्तिकी वृथा अवतारणा करनेका साहस करते हैं। ये लोग कहना चाहते हैं कि उक्त पुराणसमूह शङ्कराचार्यके आविर्भावके पश्चात् रचित हुए हैं। जो लोग पुराणोंको शङ्करके आविर्भावके बादका लिखा हुआ मानते हैं, वे पुराणोंके उन वचनोंको प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं। उन लोगोंका कहना है कि शङ्करका नाम पुराणोंमें आने के कारण शंकरका समय ईसाके भी जन्मके पूर्व है।

बड़े दुःखकी बात है, उक्त श्रेणीके ज्ञानशून्य मूर्ख ऐतिहासिकोंको यह समझना उचित है कि ऐसा होनेसे पद्मपाद, सुरेश्वर और गोविन्दपाद आदि शङ्करके समसामयिक व्यक्तियोंको भी ईसासे पहलेका मानना होगा। जैसा भी हो, ये युक्तियाँ असत् उद्देश्यमूलक हैं। उक्त दोनों युक्तियोंके विरुद्ध ऐतिहासिक तत्त्वमूलक अनेक विचार दिये जा सकते हैं। लेख-विस्तारके भयसे ऐसा करनेसे निवृत्त हुआ। अब यहाँ मायावादकी जीवनी प्रकाश करनेके लिए मायावादियोंके वचनोंपर ही प्रधानरूपसे अवलम्बन करना अपना कर्त्तव्य समझकर यहाँ अपने पक्षकी युक्ति और अन्य पक्ष नहीं दिखलाया गया है। तर्कके लिए पुराणोंकी रचना शङ्करके बादमें भी मान लिये जानेपर अथवा शङ्कर सम्बन्धी पुराणोंके वचनोंको प्रक्षिप्त मान लिये जानेपर भी यह दिखलाया जा रहा है कि शङ्कर एक प्रधान मायावादी और विशुद्ध बौद्ध थे।

शंकर महायानिक बौद्ध थे

शंकरका आविर्भाव ईसाके जन्मके पूर्व हो अथवा पश्चात्, आचार्य भास्करके साथ शंकरका विचार-युद्ध हुआ था—इसे कोई भी अद्वैतवादी अस्वीकार नहीं कर सकता; शंकराचार्यके साक्षात् शिष्य आनन्दगिरि का "शंकर-विजय" ग्रन्थ ही उसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। ऐसा जान पड़ता है कि आचार्य शंकर भास्कराचार्यको विचारमें परास्त न कर सके, बल्कि आचार्य भास्करने ही अपने वेदान्त-भाष्यमें शंकर-भाष्यके विचारोंका खण्डनकर उन्हें बौद्ध और मायावादी प्रमाणित किया है। दूरसे परोक्षमें

रहकर लेखनी द्वारा नाना प्रकारकी वाक्-वितण्डा न कर आमने-सामने विचार अथवा शास्त्रार्थमें मायावाद कहीं छिन्न-विच्छन्न हुआ है, कहीं जान बचाकर भागा है और कहीं अन्यान्य मतोंको ग्रहणकर शान्ति प्राप्त की है। इसके सम्बन्धमें मैं अधिक न कहकर केवल ऐतिहासिक घटनाओंको क्रमशः उद्धृत कर अपने उक्त वचनोंकी वास्तविकता प्रमाणित करूँगा। यहाँ आचार्य शंकरके सम्बन्धमें भास्करकी उक्तियोंको उद्धृत किया जा रहा है—

"तथाच वाक्यं परिणामस्तु स्याद् दध्यादिवदिति विगीतं विच्छिन्नमूलं महायानिक-बौद्ध-गाथायितं मायावादं व्यवर्नयन्ता लोकान् व्यामोहयन्ति।"

—(ब्रह्मसूत्रभाष्यम्-श्रीभास्कराचार्य-विरचित, १९१५ साल, चौखम्बा, संस्कृत बुक डिपो द्वारा प्रकाशित—पृष्ठ ८५)

अर्थात् (मायावादी शङ्कर) घृणित मूलहीन (सार रहित) महायानिक बौद्ध गाथाओंको ही (अपने मतके रूपमें) मायावादके नामसे प्रचारकर लोगोंको विशेषरूपसे मोहित कर रहे हैं। और दूसरी जगह भी—

'ये तु बौद्धमतावलम्बिनो मायावादिनस्तेऽप्यनेन न्यायेन सूत्रकारेणैव निरस्ता वेदितव्याः'।

(ब्रह्मसूत्र भाष्यम्-भास्कराचार्य-विरचितम् सं॰ १९०३ में; चौखम्बा संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित पृष्ठ १२४)

अर्थात् इस न्यायका अवलम्बन कर स्वयं सूत्रकारने ही (व्यासदेवने) बौद्ध मतावलम्बी-मायावादियोंका खण्डन किया है—ऐसा समझना चाहिए। भास्कराचार्यने शंकरमतका खण्डन करनेके उद्देश्यसे ही उक्त वचनोंसे युक्त ब्रह्मसूत्रके भाष्यकी रचनाकी है। भाष्यके प्रारम्भमें ही उन्होंने लिखा है—

"सूत्राभिप्रायसंवृत्या स्वाभिप्राय प्रकाशनात्।
*व्याख्यातं यैरिदं * शास्त्रं व्याख्येयं-तन्निवृत्तये।।*

—(ब्रह्मसूत्रभाष्यम्—भास्कराचार्य विरचितं—सं॰ १९०३ में चौखम्बा संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित १ ले पृष्ठमें)

अर्थात् शंकरके मतको खण्डन करनेके लिए ही इस शास्त्र की व्याख्या की जा रही है। पुराण आधुनिक हों अथवा प्राचीन, और उनके वचन प्रक्षिप्त हों अथवा न हों, भाष्करके उक्त वचनोंसे शंकर मायावादी और महायानिक बौद्ध प्रमाणित होते हैं या नहीं—इसका विचार पाठकवर्ग ही करेंगे। आचार्य भास्कर शंकरके समसामयिक प्रतिद्वन्द्वी थे। यह एक

(*यदिदं शास्त्रम् इति पाठान्तरम्।)

सर्वविदित ऐतिहासिक सत्य है। अतः उनकी उक्तियोंसे स्पष्ट विदित होता है कि आचार्य शंकरके प्रकट कालमें ही विशेष-विशेष आचार्यवर्ग उनको महायानिक बौद्ध समझते थे। क्योंकि महायानिक बौद्ध गाथाओंका अवलम्बनकर ही मायावादका शरीर, मन और जीवन गठित हुआ है। यहाँ पर कुछ प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंकी इस विषयमें स्वीकृतियोंका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

अद्वैतवादी शिवनाथ शिरोमणिका मत

अद्वैतवादी माननीय शिवनाथ शिरोमणि महोदयने आचार्य शंकरके मतकी आलोचना करते समय अपना जो मन्तव्य प्रकाशित किया है, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"महात्मा शंकराचार्यने ईशोपनिषद् आदि दस उपनिषदोंकी टीका, वेदान्त या ब्रह्मसूत्रका भाष्य और दूसरे-दूसरे बहुतसे ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। वेदान्तभाष्य या शारीरकभाष्य ही उनका अक्षय कीर्ति-स्तम्भ है। इस ग्रन्थमें उनकी असाधारण प्रतिभा और गम्भीर ज्ञानका परिचय पाया जाता है। इस ग्रन्थसे यह विदित होता है कि बौद्धमतका खण्डन करते हुए उन्होंने बौद्धोंकी युक्तियोंका ही अवलम्बन किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती बौद्ध दार्शनिक नागार्जुनके मतको अनेक स्थलोंपर ग्रहण किया है"।

—(१३०८ बंगला संवतमें प्रकाशित शब्दार्थमंजरी का परिशिष्ट, पृष्ठ ३५)

शिरोमणि महोदय शंकरकी प्रधानताकी रक्षा करते हुए यह कहना चाहते हैं कि शंकर बौद्धमतका खण्डन करनेवाले हैं। किन्तु, वास्तवमें वे बौद्धमतके पोषक हैं, न कि खण्डनकर्त्ता। समसामयिक साधारण लोगोंमें अपने प्रति श्रद्धा अर्जन करनेके लिए ही कायरतापूर्वक ऐसे वचनोंका प्रचार किया गया है। बौद्ध धर्मको खदेड़नेके सम्बन्धमें भी शंकरके विरोधी अन्यान्य आचार्यवर्गकी कीर्त्ति ही सर्वापेक्षा अधिक प्रशंसनीय और आदरणीय है। हम उपयुक्त प्रसंगपर इसकी आलोचना करेंगे।

अद्वैतवादी राजेन्द्रनाथ घोषका मत

वर्त्तमान शताब्दीमें माननीय राजेन्द्रनाथ घोष ही गौड़देशमें (बंगालमें) एक प्रधान और कट्टर अद्वैतवादी हुए हैं। व्यर्थ ही शंकरके प्रेममें मुग्ध होकर उन्होंने दूसरे-दूसरे विशुद्ध धर्मोंके प्रति कटाक्ष किया है। इससे उनके अद्वैतवादके प्रति अन्धविश्वासका पता चलता है। जैसा भी हो

प्रसिद्ध राजेन्द्र बाबू भी अपने उपास्य शंकरको बौद्ध तथा बौद्धमतका एक प्रधान पोषक स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए हैं। वे अद्वैतसिद्धिकी भूमिकामें लिखते हैं—

"बुद्धदेवके लगभग ५०० वर्ष बाद तक अर्थात् ईसाके जन्मके पहले तक अर्थात् विक्रमादित्यके (ईसा पूर्व ५७ वर्ष) आविर्भाव तक **अद्वैतमत बौद्धमतके माध्यमसे ही प्रबल भावसे प्रचारित होता रहा।**

—(अद्वैतसिद्धि की भूमिका—पृष्ठ १०)

राजेन्द्र बाबू कहना चाहते हैं कि बौद्धमत अवैदिक नहीं है। वह भी एक वैदिक मत है। इसका कारण यह है कि बौद्धमतको अवैदिक स्वीकार करनेसे शंकरके मतको भी बाध्य होकर अवैदिक ही मानना पड़ेगा। किन्तु उन्होंने बौद्धमतके साथ शंकरमतका कुछ पार्थक्य भी बतलानेकी चेष्टाकी है। उनका कहना है कि बौद्धमत वैदिक होनेपर भी मूलच्छेदी (जड़को काटनेवाला) है और शंकरका मत मूलरक्षी है (?)। वास्तवमें शंकर भी मूलच्छेदी हैं। राजेन्द्र बाबू कहते हैं—"बौद्धमत वेदमूलक होनेपर भी मूलच्छेदीके रूपमें परिणत हुआ।" बौद्धत्वके हाथसे आचार्य शंकरकी रक्षा करनेके लिए उन्होंने नाना प्रकारकी चेष्टाएँ की हैं, पर वह किसी प्रकार भी सम्भव दिखाई नहीं पड़ता।

मायावादके प्रचारके कारण

मायावादके प्रचार होनेके कारणके सम्बन्धमें पहले भी कुछ आलोचना की गई है। फिर भी प्रसंगवश और भी दो-एक वचनोंको उद्धृतकर मायावादके ऐतिह्यके सम्बन्धमें आलोचना करनेके लिए प्रवृत्त हो रहा हूँ—

"मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण-मूर्त्तिणा।"
"माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।।"

—(पद्मपुराण)

"विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामि वृषध्वज।"
"चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवे स्थितः।।"

—(कूर्म पुराण, पूर्व भाग)

उक्त वचनों द्वारा प्रधानतः शंकर ही मायावादके जन्मदाता प्रतीत होते हैं। किन्तु 'प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते' द्वारा बुद्धदेवको ही उक्त मतका आदि जनक समझा जाता है। और 'माञ्च गोपय' इस वाणी द्वारा यह भी प्रतिपादित

होता है कि 'ईश्वरकी इच्छा' मायावादकी सृष्टिका मूल कारण है। भगवान्‌की ऐसी इच्छा प्रकट करनेकी लीलाका कारण है—भक्तवात्सल्य। "कृष्ण भूलि सेई जीव आनादि वहिर्मुख" अर्थात् कृष्णको भूलकर जीव अनादि बहिर्मुख हो जाता है—अतएव ऐसा देखा जाता है कि जीव कृष्णकी सेवा भूलनेके कारण ही 'सोऽहं' भावसे विभावित होकर भक्तोंके प्रति ईर्ष्या करने लगता है।

यहाँ देखा जाता है कि भगवत्-विस्मृति और उसके द्वारा ईश्वरकी इच्छा ही मायावादकी सृष्टिके उपादान और निमित्त कारण हैं। तथा ब्रह्माकी सृष्टिके प्रारम्भसे ही किसी-न-किसीको उस अद्वयज्ञान-पथका पथिक होते हुए देखा जाता है।

सत्य, द्वापर, त्रेता—इन तीनों युगोंके प्रत्येक युगमें साधारण-साधारण दो-एक ज्ञानवादी दीख पड़ते हैं। इनके ज्ञानके प्रभावसे या मायावादके प्रखर तेजसे भक्ति-लताको सूखते देखकर भगवान् धर्मरूप भक्तिशास्त्रकी स्थापना करनेके लिए एवं मायावादरूप दुष्कृतिके विनाशके लिए प्रत्येक युगमें जन्म ग्रहण करते हैं। 'देवताओंकी रक्षा तथा असुरोंका विनाश'—ये भगवान् श्रीबलदेवकी लीलाएँ हैं। इसीलिए वे इन तीनों युगोंमें आविर्भूत होकर मायावादियोंकी दुर्बुद्धिका विनाशकर उन्हें भक्तिधर्ममें स्थापित कर देते हैं। मायावादी अपने मतकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेमें असमर्थ होकर भक्तिके सौरभसे आकृष्ट होकर नीरस ज्ञानपथको मलके समान परित्याग करते हुए भगवान्‌की नित्य-सेवा-धर्ममें अपना मस्तक नत कर देते हैं। (आश्चर्यका विषय है कि आजतक एक भी विशुद्ध भक्ति धर्मावलम्बीने अपना मत परित्यागकर मायावादियोंके निकट अपना मस्तक नहीं झुकाया है।) मैं ऐतिहासिक रूपमें ही सत्ययुगसे आरम्भकर आजतकके इतिहासका छान-बीनकर संक्षपमें उसका परिचय प्रदान कर रहा हूँ। प्रत्येक स्थलपर प्रमाण उद्धृतकर इस विषयका वर्णन करनेसे लेखका कलेवर अधिक बढ़ जाएगा। अतएव इतिहास प्रसिद्ध, सर्ववादी-सम्मत सत्य घटनाओंका ही अवलम्बनकर अपने निर्दिष्ट विषयकी ओर अग्रसर हो रहा हूँ।

सत्ययुगमें ज्ञानवाद और उसकी परिणति 'चतुःसन'

सत्ययुगमें सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार—इन चारों कुमारोंकी कथा शास्त्रोंसे विदित होती है। ये चतुःसनके नामसे परिचित हैं। प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे जिस सृष्टि-प्रक्रियाका लोकसमाजमें प्रचलन है अर्थात्

जीवोंका जैसे इस जगत्‌में जन्म होता है, उस नियमके अपवाद हैं—ये चारों कुमार। ब्रह्माके कल्पना-प्रसूत सनकादि चारों कुमार मानस-पुत्रके रूपमें ब्रह्माके प्रथम सृष्टि-कौशलके भव्य निदर्शनस्वरूप विख्यात हैं। वे बाल्यकालसे ही ज्ञानयोग द्वारा ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। चारों कुमारोंका यह ज्ञानयोग कुछ-कुछ निर्विशेषमूलक होनेके कारण शुद्धभक्तिके प्रतिकूल पड़ता था। इससे पिता ब्रह्मा बड़े दुःखी हुए। इन्होंने भगवान्‌के निकट जाकर चारों कुमारोंका कल्याण करनेके लिए प्रार्थना की। सृष्टिके प्रथम सन्तानोंकी ऐसी अवस्था देखकर भगवान्‌ने हंसरूपमें अवतीर्ण होकर चारों कुमारों और नारदको भक्तियोगकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवतमें इस प्रसंगमें ब्रह्मा नारद और चारों कुमारोंको सम्बोधन करते हुए कह रहे हैं—

"तुभ्यञ्च नारद! भृशं भगवान् विवृद्ध—भावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञानञ्च भागवतमात्मसत्त्वदीपं यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव।"

(श्रीमद्भा॰ २/७/१९)

अर्थात् तुम्हारे अत्यन्त प्रेमसे परम प्रसन्न होकर हंसावतारमें भगवान्‌ने तुम्हें भक्तियोग और उसके अनुकूल भगवद्विषयक ज्ञानका उपदेश दिया था।

अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्वके आचार्य गोविन्द भाष्यके रचयिता आचार्य श्रीपाद बलदेवने उक्त श्लोकमें 'तुभ्यञ्च नारद' इस वाक्यमें 'च' शब्दका तात्पर्य सनकादि चारों कुमारोंसे बतलाया है। लघुभागवतामृतके हंसावतार प्रसंगमें ७२ वें श्लोकको 'सारङ्गरङ्गदा' टीकामें उन्होंने लिखा है—

तुभ्यञ्चेति चात् सनकादिभ्यः।

श्रील कविराज गोस्वामीकी लेखनी द्वारा विदित होता है कि भगवान् शेषावतारने सनकादि ऋषियोंको श्रीमद्भागवतकी शिक्षा दी थी। यथा—

"सेई त अनन्त शेष भक्त अवतार।"
ईश्वरेर सेवा बिना नाहि जाने आर।।
सहवस्त्रदने करे कृष्ण-गुणगान।
निरवधि गुणगान अन्त नाहि पान।।
सनकादि भागवत सुने यार मुखे।
भगवानेर गुण कहे भासे प्रेमसुखे।।

(चै॰ च॰ अ॰ ५/१२०-१२२)

चैतन्यचरितामृत ग्रन्थसे प्रमाणित होता है कि केवल हंसावतारने ही सनकादि चारों कुमारोंको भक्तिसिद्धान्तका उपदेश नहीं दिया था, अपितु शेषावातारने भी उन्हें भागवतधर्मकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवत भक्ति-सम्बन्धी अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वका चरम सिद्धान्त-शास्त्र है। सनकादि चारों कुमारोंने भक्तावतार श्रीअनन्तदेवके निकट भागवतके उन सिद्धान्तोंको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था, इसीलिए सनक सम्प्रदायके आचार्य श्रीपाद निम्बार्क स्वामीने वेदान्तका द्वैताद्वैत-सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए चतुःसनको ही अपना पूर्वाचार्य स्वीकारकर वेदान्तके 'पारिजात सौरभ' नामक भाष्यकी रचना की है।

सनकादि चारों कुमारोंके नामपर ही इस सम्प्रदायका नाम सनक सम्प्रदाय हुआ है। इस सम्प्रदायके इतिहासकी आलोचना करनेसे विदित होता है कि हंसावतार ही इन चारों कुमारोंके गुरु थे। हंसावतारके निकट भक्तिकी कथा सुनकर वे अपने शुष्क ज्ञानका परित्यागकर भक्तिका प्रचार करने लगे। अब उनकी गणना भक्ति-धर्मके आचार्योंमें होने लगी।

वास्कलि या वास्कल

वास्कल-उपाख्यानके अनुसार वास्कलि या वास्कलने अद्वैतवादी वाध्वऋषिके निकट अद्वैतवादकी शिक्षा पाई थी। कोई-कोई उन्हें बाध भी कहते हैं। जनश्रुतिके अनुसार वाध्व ऋषिके बाद वास्कल एक प्रधान अद्वैतवादी हुए थे। आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मसूत्र(३/२/१७)के भाष्यमें वाध्व-वास्कलिके कथोपकथनको श्रुतिसे प्रमाणस्वरूप ग्रहण किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिए उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

'वास्कलिना च वाह्वः (र्धः) पृष्टः सन्नवचनेनैव ब्रह्म प्रोवाचेति श्रुयते स होवाचाधाहि भगवो ब्रह्मेति स तुष्णीं वभूव, तं ह द्वितीये वा तृतीये वा वचन उवाच—ब्रह्मः खलु, त्वन्तु न विजानास्तुपशान्तोऽयमात्मा।'

अर्थात् मायावादके ब्रह्मका ज्ञान लाभ करनेके लिए चुपचाप मूक होकर बैठनेसे ही ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। युक्ति विचार या शास्त्रज्ञानके द्वारा इस मायावादके ब्रह्मके विषयमें कुछ भी जाननेका कोई उपाय नहीं है। मैंने पहले शंकराचार्य द्वारा रचित दक्षिणामूर्त्ति-स्तवके जिस बारहवें श्लोकको उद्धृत किया है, वह वाध्व-वास्कलि उपाख्यानकी ही प्रतिध्वनि स्वरूप है। शंकारचार्य द्वारा उद्धृत उक्त श्रुति-वचनका वेदान्त वागीशकृत मन्तव्यके साथ अनुवाद आप लोगोंके सामने उपस्थित कर रहा हूँ। यथा—

"श्रुतिमें और भी सुना जाता है कि वास्कलि द्वारा जिज्ञासा किये जानेपर वाध्वने निरुत्तर द्वारा ब्रह्म-तत्त्वका निर्देश दिया था। 'भगवन्! आप मुझे ब्रह्मका अध्ययन करावें।'—वास्कलिने जिज्ञासा की। किन्तु, वाध्व चुपचाप मूक जैसे बैठे रहे। 'भगवन्! मुझे ब्रह्मका उपदेश करें।'—वास्कलिने दूसरी बार फिर पूछा और फिर तीसरी बार भी। 'मैं तो निश्चय पूर्वक कह रहा हूँ कि यह आत्मा उपशान्त अर्थात् अखण्डैकरस अद्वैत है।' —वाध्वने अपना अभिप्राय प्रकट किया। (अभिप्राय यह कि ब्रह्म निर्विशेष होनेके कारण वाक्यपथके अतीत और बोलनेके अयोग्य है, अतः निरुत्तरता ही तुम्हारे प्रश्नका प्रकृत उत्तर है।)

उक्त प्रामाणिक ऐतिह्यपर दृष्टिपात करनेसे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि वास्कलि मायावादी थे, इसमें तनिक भी सन्देह की गुँजाइश नहीं। इसी वास्कलिका परिचय श्रीमद्भागवतमें भी पाया जाता है—

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी।
जम्भस्य तनया सा तु सुषुवे चतुरः सुतान्।।
संह्रादं प्रागनुह्रादं ह्रादं प्रह्रादमेव च।
तत्स्वसा सिंहिकानाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत्।।
* * * * *
अनुह्रादस्य सूर्यायां वास्कलो महिषस्तथा।।

(श्रीमद्भा॰ ६/१८/१२-१३, १६)

अर्थात् हिरण्यकशिपुकी पत्नी कयाधु नामक एक दानवी थी। उसके पिता जम्भने उसका विवाह हिरण्यकशिपुके साथ कर दिया था। कयाधुने चार पुत्रोंको प्रसव किया था—संह्राद, अनुह्राद, ह्राद, और प्रह्राद। इनकी सिंहिका नामक एक बहन भी थी। उसका विवाह विप्रचित् नामक एक दानवके साथ हुआ और इनसे राहु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।।१२-१३।।

अनुह्रादकी सूर्या नामक पत्नीसे दो पुत्र हुए—वास्कल और महिष।।१६।।

हिरण्यकशिपुके औरससे कयाधुके गर्भमें अनुह्रादका जन्म हुआ था। माता-पिताके असुर होनेके कारण अनुह्राद भी उनकी अपेक्षा कुछ अन्य प्रकारके न हुए। इन्हीं अनुह्रादके पुत्र ही वास्कल हैं। अतएव वास्कल भी उस युगमें एक असुरके रूपमें ही प्रसिद्ध थे। मायावादके इतिहासमें ऐसे ही अनेक उदाहरण युग-युगमें ही दीख पड़ते हैं। यदि ऐतिह्यकी तनिक

भी प्रामाणिकता सिद्ध है, तो उसके आधारपर यह स्पष्ट ही प्रमाणित होता है कि मायावादके चिन्ताश्रोतका आदर असुर और राक्षस कुलमें ही विशेषरूपेण होता आया है। निरपेक्ष सरल-हृदय वाले मुनि-ऋषियोंके बीच जिन्होंने अद्वैतवादको स्वीकार किया, पीछेसे वे भगवदवतारों द्वारा शोधित किये जानेपर मायावादका परित्यागकर श्रीभगवान्के चरण-कमलोंका पुनः आश्रय करनेमें समर्थ हुए थे। किन्तु मायावादका आश्रय ग्रहण करने वाले कठिन हृदययुक्त असुर लोग अत्यन्त कट्टर अन्धविश्वासी होनेके कारण भक्ति-तत्त्वके अधिकारी न हो सके। भक्ति-तत्त्वके रक्षक भगवान् एवं भगवत्-अवतारोंने उक्त असुरोंका पूर्णरूपेण विनाशकर भक्ति-तत्त्वकी श्रेष्ठता स्थापनपूर्वक उनका कल्याण किया है। भगवदवतार वामनदेवने इस वास्कलिका उद्धार किया था। गौड़ीय वैष्णवाचार्य मुकुटमणि श्रीरूप गोस्वामीने अपने लघुभागवतामृत ग्रन्थमें वामनदेवके वास्कलि-उद्धारके अतिरिक्त और भी दो बार आविर्भूत होनेका उल्लेख किया है। यथा—बलि और धुन्धीके यज्ञमें वामनदेवका और भी दो बार आविर्भाव हुआ था। उक्त ग्रन्थके अष्टादशावतार श्रीवामनदेवके प्रसंगका ८० संख्यक श्लोक नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

वामनस्त्रिरभिव्यक्तिं कल्पेऽस्मिन् प्रतिपेदिवान्।
तत्रादौ दानवेन्द्रस्य वास्कलेरध्वरं ययौ।।

अर्थात् इस कल्पमें वामनदेवका तीन बार आविर्भाव हुआ है। इनमें सर्वप्रथम वे वास्कलिके यज्ञमें पधारे थे।

भगवान् वामनदेव ने वास्कलि असुरके यज्ञमें आविर्भूत होकर उसका उद्धार किया था। इस प्रकार सत्ययुगमें चतुःसनके द्वारा ज्ञानवादका परित्यागकर भक्ति-पथका आश्रय ग्रहण करनेसे तथा वास्कलि दानवके उद्धारसे अद्वैतवादका विनाश और भक्ति धर्मकी प्रतिष्ठा हुई थी।

त्रेतायुगमें अद्वयवाद और उसकी परिणति

वशिष्ठ

त्रेतायुगमें वशिष्ठमुनि अद्वैतवादके प्रधान आचार्य थे। ये सूर्यवंशी राजाओंके कुल-गुरु थे। रामचरित मानसमें उनके ज्ञानी मुनि होनेकी एक झलक पायी जाती है। श्रीरामचन्द्रके वन-गमन और पिताकी मृत्युसे शोकातुर भरतको सान्त्वना देते समय श्रीरामचन्द्रके प्रति लक्ष्मणजी और सीताजीकी

निर्मल प्रीतिका वर्णन करते-करते गुरु वशिष्ठ जैसे ज्ञानी-मुनि भी प्रेममें मग्न हो जाते हैं—

भरत वसिष्ठ निकट बैठारे।
नीति धर्ममय बचन उचारे।।
सोक सनेह मगन मुनिज्ञानी।

(रामचरितमानस)

और जब महाराज दशरथने पुत्रकी कामनासे यज्ञका अनुष्ठान किया था, तब उनके बुलाये जानेपर वशिष्ठ ऋषि भी उस यज्ञस्थलीमें उपस्थित हुए थे। इस प्रसंगमें कीर्त्तिवासी रामायणमें (बंगला) भी वशिष्ठ मुनिको ज्ञानी मुनि कहा गाया है—*वशिष्ठादि आईलेन यत ज्ञानीमुनि।*

अतः वशिष्ठजी एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे—इस विषयमें कहीं भी कोई मतभेद नहीं दिखलाई पड़ता है। योगवाशिष्ठ रामायण इसका अकाट्य प्रमाण है। श्रीमद्भागवतमें उनके सम्बन्धमें जो परिचय मिलता है, यहाँ उसे उद्धृत किया जा रहा है—

"वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत् किल।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी।।
रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम्।
रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात्।।"

(श्रीमद्भा॰ ६/१८/५-६)

उक्त दोनों श्लोकोंमें प्रथम अर्थात् पाँचवे श्लोककी टीकामें श्रीधरस्वामीने (श्रीधर स्वामी वैष्णव थे। परन्तु अद्वैतवादी उनको अपने सम्प्रदायका एक प्रधान आचार्य कहते हैं) लिखा है—

वल्मीकात् वल्मीकिर्वरुणस्यैव पुत्रोऽभवत्। एतौ वरुणस्यासाधारणौ पुत्रौ। तथोत्सर्गादयो मित्रस्यासाधारणाः। तयोरेव साधारणौ द्वौ पुत्रौ चाह, अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च ऋषौ मित्रावरुणयोरभवताम्।'

अर्थात् स्वामीचरणने भृगु और वाल्मीकि मुनिकी वैष्णवता और पाण्डित्य देखकर इन्हें 'असाधारण' पुत्र कहा है। किन्तु वशिष्ठ और अगस्त मुनिको ब्रह्मज्ञानी और मायावादी जानकर इन दोनोंकी गणना 'साधारण' पुत्रोंमें की है। द्वितीय अर्थात् छठे श्लोकमें वशिष्ठका जन्मवृतान्त वर्णन किया गया है। उर्वशीको देखकर उसके निकट ही वरुणका वीर्य स्खलित हो गया। वरुणने उस वीर्यको उठाकर घड़ेमें रख दिया। उसीसे वशिष्ठका जन्म

हुआ था। इस तरह वशिष्ठ उर्वशीके सन्तानके रूपमें प्रसिद्ध हुए। हो सकता है, श्रीधरस्वामीने इसीलिए वशिष्ठमुनिको 'साधारण' पुत्र कहा हो। वशिष्ठमुनि ज्ञानपथमें विचरण करते हुए अपने आश्रममें अपने शिष्योंको निर्भेद-ब्रह्मकी शिक्षा दिया करते थे। श्रीरामचन्द्रजी अपने कुल-गुरुको ब्रह्म-ज्ञानमें भटकते देखकर बड़े दुःखी हुए और कृपाकर उन्होंने उनका उद्धार किया। रामचन्द्रने उन्हें भक्ति प्रदान की। उस भक्तिके अगाध स्रोतमें उनकी अद्वैत चिन्ता, उनका ब्रह्मज्ञान न जाने किधर बह गया। अब उन्होंने भगवान् श्रीरामचन्द्रकी सेवामें आत्म-नियोग कर दिया।

रावण

मध्व सम्प्रदायमें आज भी एक जनश्रुति चलती आ रही है कि शंकरसम्प्रदायके ज्ञानी लोग लंकाधिपति दशाननको (रावणको) ही वेदान्तके अद्वैत सिद्धान्तका आदि भाष्यकार कहते हैं। अतएव राक्षसकुलपति रावणको अद्वैतवादी कहा जा सकता है। रावणके जन्म वृत्तान्तके सम्बन्धमें श्रीकृष्णसंहिता नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"पुलस्त्यवंशीय ऋषि ब्रह्मावर्तका परित्यागकर लंकाद्वीपमें कुछ समय तक रहे। वहाँ उन्होंने एक राक्षस-कन्यासे विवाह किया। उसी कन्यासे रावणवंशकी उत्पत्ति हुई। इसीलिए रावणको अर्द्ध ऋषि और राक्षस कहा जा सकता है।"

उपरोक्त वचनोंसे मध्व सम्प्रदायका यह प्रवाद सत्य प्रतीत होता है कि रावण राक्षस होनेपर भी एक घोर मायावादी ऋषि थे। बौद्ध सम्प्रदायके 'लंकावतार सूत्र' से भी पता चलता है कि रावण एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी और शून्यवादी ऋषि थे। इसके अतिरिक्त रावणके क्रियाकलापसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे एक प्रधान अद्वैतवादी थे। **ब्रह्मकी शक्तिको अपहरणकर उसे निःशक्तिक ब्रह्मके रूपमें स्थापन करनेकी चेष्टा ही मायावादियोंका मूल-मंत्र है। रावणके अन्तःकरणमें परब्रह्म श्रीरामचन्द्रकी शक्ति सीतादेवीको हरण करनेकी चेष्टा देखी जाती है।** मायावादी रावण अपने शिष्यानुचरवर्गकी सहायतासे सीतादेवीको हरण करना चाहता था। भगवत्-शक्तिको ग्रहण करनेसे उस शक्तिके आनुगत्यमें भगवत्सेवाकी प्रवृत्ति जग पड़ती। मायावाद-मंत्र सोऽहं-तत्त्वरूप रावणका श्रीसीतादेवीके सम्पर्कसे रामचन्द्रकी पदवी ग्रहण करनेकी वासना नष्ट हो जाती, इसलिये देखा जाता है कि उक्त प्रवाद केवल प्रवाद ही नहीं है, बल्कि प्रकृत सत्य है एवं रावण सचमुच ही अद्वैतवादी था। परम भक्त हनुमानके द्वारा रावणके हृदयमें भक्तिसिद्धान्तरूप

एक जोरका घूँसा मारे जानेपर उसका अद्वैत-ज्ञान लुप्त हो गया। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। फिर रामचन्द्रके वेद-ध्वनिरूप वाणसे उसका निर्वाण-दशकशीर्ष कटकर अलग हो गया। तब रावणने श्रीरामचन्द्रका स्तव कर अपनेको कृतार्थ किया था।

अब देखा जाता है कि त्रेतायुगमें भी भगवान्ने अवतीर्ण होकर मायावादी राक्षसोंका विनाश तथा अद्वैतवादी ऋषियोंका उद्धार किया था। **इस प्रकार त्रेतायुगमें भी मायावादका विनाश होनेपर भक्तिसिद्धान्तकी विजय-पताका पुनः लहराने लगी थी।**

द्वापर युगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति 'श्रीशुकदेव'

श्रीव्यासदेवने जावालिकी कन्या वीटिकाको गोद लिया था। (उस समय पुत्र और कन्या दोनोंको गोद लेनेकी प्रथा थी।) उन्होंने उसके साथ बहुत दिनों तक तपस्या की। पीछे पुत्रकी कामनासे वीटिकामें वीर्य-स्थापन किया। वीटिकाको गर्भ रहा। बारह वर्ष तक गर्भमें रहनेके पश्चात् भगवान्की आज्ञा और पिताकी प्रार्थनासे माताका क्लेश दूर करते हुए मायामुक्त अवस्थामें श्रीशुकदेवजी भूमिष्ठ हुए। भूमिष्ठ होनेके साथ-ही-साथ वे शुक पक्षीकी तरह भगवान्का स्तव-पाठ करने लगे। इसीलिए इनका नाम शुकदेव पड़ा। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें शुकदेवजीकी जन्म-कहानीका विस्तृतरूपसे वर्णन किया गया है। इस प्रसंगमें श्रीमद्भागवत (९/११/२५) की श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीका आलोचनीय है।

"विचिन्त्य मनसा चक्रे भार्यां जावालिकन्यकाम्। वीटिकाख्यां ददौ तस्मै सोऽपि वैखानासाश्रमी। ततश्च व्यासस्तया सह बहुकालं तपस्तेपे, तदन्ते तस्यां वीर्यमाधत्त। सा च गर्भवती एकादशसु वर्षेषु व्यतीतेष्वपि न प्रसूते स्म। अथ द्वादशे वर्षे इत्यादि अतो गर्भान्निसृत्य प्रणम्य वहुस्तवानं त्वं दृष्ट्वा भगवानाह—"व्यास! त्वदीय तनयः शुकवन्मनोज्ञं ब्रूते वचो भवतु तच्छुक एव नाम्नेति।"

इन्हीं शुकदेवजीने अभिशप्त परीक्षित महाराजको श्रीमद्भागवतका उपदेश दिया था।

हरिवंशमें एक और शुककी कथा पायी जाती है। किन्तु ये शुक दूसरे थे। ये भी व्यासदेवके पुत्र थे। किन्तु ये अरणीसे पैदा हुए थे तथा छाया शुकके नामसे प्रसिद्ध हैं। महाराज परीक्षितके साथ इस छाया शुकका कोई सम्बन्ध नहीं था। वीटिकाके पुत्र शुकदेव निर्गुण ब्रह्मज्ञानी थे। इनके निर्गुण ब्रह्मज्ञानमें

मग्न होनेपर भी भगवान्‌के शक्त्यावेशावतार श्रीव्यासदेवजीने कौशलसे इनको ब्रह्म-ज्ञानकी तपस्यासे हटाकर शुद्ध-भगवत्-ज्ञानके सहज, सरल तथा मधुर भक्तितत्त्वकी ओर लाया। श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें स्वयं जैसा अपना परिचय दिया है, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म-सम्मितम्।
अधीतवान् द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम्।।
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमः-श्लोक-लीलया।
गृहीत-चेता राजर्षे आख्यानां यदधीतवान्।।

(श्रीमद्भा॰ २/१/८-९)

अर्थात् परीक्षितको सम्बोधनकर श्रीशुकदेव गोस्वामी कह रहे हैं—"राजर्षे! द्वापरके अन्तमें इस भागवतरूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामक महापुराणका मैंने अपने पिता श्रीकृष्णद्वैपायनसे अध्ययन किया था। निर्गुणस्वरूप ब्रह्ममें मेरी निष्ठा पूर्ण होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया।

अतएव शुकदेव निर्गुण ब्रह्म-ज्ञानी होनेपर भी श्रीव्यासदेवकी कृपासे निर्गुण ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा उत्तमःश्लोक भगवान्‌की मधुर लीलाओंकी श्रेष्ठता उपलब्धिकर इसकी ओर आकर्षित हुए थे। और ऐसी लीलाओंसे पूर्ण श्रीमद्भागवतके एकमात्र श्रवण, कीर्त्तनादि द्वारा ही जीवोंका परम मंगल हो सकता है—ऐसा जानकर इन्होंने श्रद्धालु परीक्षितको श्रीमद्भागवतका ही उपदेश प्रदान किया। उन्होंने परीक्षितको ब्रह्म-ज्ञानका उपदेश न दिया, क्योंकि ब्रह्म-ज्ञानसे न तो परीक्षित महाराजका कोई कल्याण हो सकता था और न दूसरोंका ही। श्रीशुकदेवजी वैष्णव सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य हैं।

कंस

राक्षसराज कंस महाराज उग्रसेनका पुत्र था। उसकी माताका नाम पद्मा था। उग्रसेनके दैवस्वभावयुक्त होनेके कारण कंस उनको कारागारमें बन्दकर स्वयं राजा बन बैठा। उसकी चचेरी बहनका विवाह विशुद्ध-सत्त्व वसुदेवजीके साथ हुआ था। विवाहके समय अचानक एक दैव वाणी हुई कि इससे (देवकीके गर्भसे) विशुद्ध-सत्त्वसे स्वयं भगवान् आविर्भूत होकर कंसको मारेंगे। नास्तिक कंसने दैव वाणीको मिथ्या करनेके लिये देवकीको मारना चाहा। फिर सोच समझकर देवकी और वसुदेवको कारागृहमें बन्द कर

दिया कि भगवद्विग्रहके प्रकट होते ही मैं उनका विनाश कर दूँगा। मायावादी श्रीविग्रहके विरोधी होते हैं। उनके दार्शनिक विचारोंमें भगवान्‌का कोई नित्य अप्राकृत विग्रह या आकार नहीं होता। शरीर धारण करना मायाका धर्म है और इस शरीर या अविद्याके धर्मका नाश करना ही मोक्ष है—यह शङ्कराचार्यका शारीरक सिद्धान्त है। देवकीके आठवें गर्भमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भी हमारी तरह प्राकृत या मायिक शरीर (?) धारणकर जन्म ले रहे हैं; कंस मन-ही-मन ऐसा सोचकर उनका विनाश करनेके लिये व्यस्त हो गया। कंस यह नहीं जानता था कि भगवान् कभी भी मायिक शरीर धारणकर नहीं आते। उसे यह भी मालूम नहीं था कि अप्राकृत वस्तु इन्द्रियादि प्राकृत वस्तुसे अगोचर हैं। मायावादी कंसका भगवत्-विग्रहके प्रति ईर्ष्या-द्वेष लक्ष्यकर भगवान् कृष्णने उसे तथा उसके शिष्यानुचर प्रलम्ब, तृणावर्त, अघ, वक, पूतना आदि असुरोंका विनाशकर अपने विग्रहका वैशिष्ट्य स्थापित कर दिया।

श्रीकृष्ण संहिताके चतुर्थ अध्यायमें कंस और प्रलम्बासुरको प्रच्छन्न बौद्ध और मायावादी कहा गया है। कृष्ण और बलदेवने उनका विनाशकर नास्तिक मायावादके कराल कवलसे उस युगके जीव-समूहकी रक्षा की थी।

"देवकीमगृहीत् कंस नास्तिक्य-भगिनीं सतीं।"
"प्रलम्बो जीवचौरस्तु शुद्धेन शौरिणा हतः।
कंसेन प्रेरितो दुष्टः प्रच्छन्न बौद्धरूपधृक्।।"

(कृष्ण संहिता)

अर्थात् वसुदेवने नास्तिक्यकी प्रतिमूर्त्ति कंसकी बहन देवकीसे विवाह किया था एवं उस कंसके द्वारा भेजे गए प्रच्छन्न बौद्धमत मायावादस्वरूप जीवचौर दुष्ट प्रलम्बासुरका श्रीबलदेवजीने वध किया था।

उपरोक्त श्लोकमें 'जीवचौर' शब्दकी सार्थकता यह है कि बौद्ध भी मायावादकी भाँति यह स्वीकार करते हैं कि अविद्याग्रस्त होनेपर ही ब्रह्म विग्रह स्वीकार करते हैं (अर्थात् शरीर धारण करते हैं) एवं ब्रह्मकी यह अविद्याग्रस्त अवस्था ही जीवस्वरूप है। इस स्वरूप अर्थात् विग्रहका अपनोदन या अपहरण करना ही चौरत्व (चोरी) है। विग्रहका विनाश तथा जीवत्वको हरण करना ही उक्त असुरोंका स्वरूपगत स्वभाव था। इसलिये ये लोग मायावादी, नास्तिक तथा जीवचौर हैं। अथवा जीवत्व

नामकी कोई वस्तु नहीं—सभी ब्रह्म हैं; ब्रह्म ही अविद्याग्रस्त होकर जीव भावमें हैं—यही मायावादियोंका विचार है। अतः अद्वैतवादी जीव-चौर ही ठहरते हैं। कृष्ण और बलरामने उनकी उस दुर्बुद्धिका विनाशकर उनका परम कल्याण किया था। **इस प्रकार द्वापर युगमें भी अद्वैतवादके विनाश होनेसे वैष्णव धर्मकी पुनः प्रधानता स्थापित हुई।**

तीनों युगोंमें अद्वैतवादका परिणाम

सत्य, त्रेता और द्वापर—तीनों युगोंमें ही भगवान् की इच्छासे मायावादका उत्थान और पतन हुआ है। उक्त युगोंमें और भी बहुतसे ॠषि और राक्षसों या असुरोंने अद्वैतवाद या मायावादको स्वीकार किया था। मैंने इन दोनों श्रेणियोंके प्रधान अद्वैतवादियोंकी जीवनीका उल्लेख किया है तथा उनका अन्तिम परिणाम निर्देशपूर्वक मायावादकी जीवनीकी एक झलक आप लोगोंके सामने उपस्थित की है। करुणावरुणालय भगवान्ने अद्वैतवादी ॠषियोंको कृपाकर वैष्णव धर्ममें आकर्षणकर अपनी सेवामें नियुक्त किया था और मायावादी असुरों और राक्षसोंका विनाशकर कृपापूर्वक उन्हें मुक्ति प्रदान की थी। इसीलिये स्वयं भगवान् 'मुक्तिपद' के नामसे पूजित होते हैं। **स्मरण रहे कि प्रागैतिहासिक युगका मायावाद या निर्विशेषवाद तथा वर्त्तमान युगका मायावाद, जिसके प्रवर्त्तक आचार्य शङ्कर हैं, एक नहीं है।** वर्त्तमान मायावाद अत्यन्त आधुनिक ही नहीं अपितु शास्त्र-विरुद्ध और व्यास-विरुद्ध है। भगवान्ने अद्वैतवादी असुरोंको मुक्ति प्रदानकर जो सायुज्य प्रदान किया था, वह अत्यन्त आसुरिक और कष्टप्रद होनेपर भी आत्यन्तिक निर्विशेषरूप मिथ्या अवस्था नहीं है। **आचार्य शङ्करकी मुक्ति काल्पनिक और मिथ्या है अर्थात् उसकी पारमार्थिक सत्यता बिलकुल नहीं है।**

आधुनिक मतानुसार कालका विभाग

पाश्चात्य विचारोंसे अथवा इनके मतवादसे अनुप्राणित भारतीय शिक्षित समाज और इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानके ऊपर निर्भर करने वाले ज्योतिषियोंने सत्य, त्रेता और द्वापर युगोंकी स्थितिकालका और वर्तमान कलियुगके बीते हुए कालका निर्णय किया है। उनमें किसी किसीके मतानुसार सत्य युगसे लेकर आजतक सब मिलाकर लगभग ७५०० वर्ष बीते हैं। उपर्युक्त मतवादके भीतर प्रवेश न कर पाश्चात्य पण्डितों तथा भारतीय ज्योतिषियोंके विचारोंका कुछ कुछ सामञ्जस्य रखते हुए विचार करनेसे असुरोंको विनाश

और मोहित करनेके लिए भगवान्के आविर्भावोंकी एक कालगत धारा लक्ष्य की जाती है। यहाँ उसी धाराका एक साधारण विचार दिखलाया जा रहा है। सत्ययुगके लगभग ५०० बर्ष बीतने पर भगवान्के शेषावतार और हंसावतारसमूहका आविर्भाव हुआ। हंसावतारके १००० वर्ष बाद त्रेतायुगमें श्रीरामचन्द्रके आविर्भावका समय है। श्रीरामचन्द्रके आविर्भावके १००० वर्षके भीतर द्वापरके शेषभागमें श्रीकृष्ण और बलरामका आविर्भाव काल है। अतः द्वापरके शेषतक न्यूनाधिक २५०० वर्ष बीतने पर कलियुग आरम्भ हुआ है। श्रीकृष्णके तिरोभावके १००० वर्षके बाद अर्थात् "कलौ सम्प्राप्ते" अर्थात् कलियुगके सम्पूर्णरूपसे व्यापक होनेपर **विष्णुबुद्ध** या **आदिबुद्ध**का आविर्भाव हुआ। उनके १००० वर्ष बाद **शाक्यसिंहबुद्ध**का जन्म हुआ था। इनके १००० वर्ष बाद लगभग ५०० ई॰ में आचार्य शंकरका आविर्भाव हुआ था। इनके १००० वर्ष बाद लगभग १५०० ई॰ (१४८६ ई॰ में) समस्त अवतारोंके मूल पुरुष स्वयं भगवान् **श्रीश्रीकृष्णचैतन्य** महाप्रभुका प्रकटकाल है। श्रीचैतन्यदेवके लीला संवरण करनेके बाद आज तक न्यूनाधिक ४७० वर्ष बीत चुके हैं।

अब देखा जाता है कि हंसावतारसे कृष्ण, बलराम तक २००० वर्षका अन्तर है। कृष्णसे शाक्यसिंह बुद्ध तक भी २००० वर्षका अन्तर है और शाक्यसिंह बुद्धसे चैतन्यदेव तक भी वही २००० वर्षका ही अन्तर है। द्वापर युगके कृष्णावतार तक २००० वर्षकी मायावादकी जीवनी पाठकोंके निकट निवेदन की गई है। वर्तमान युगके पूर्व २००० वर्ष अर्थात् शाक्यसिंह बुद्धके आविर्भावके पूर्वतक मायावादका प्रताप परिलक्षित नहीं होता। कलियुग आरम्भ होनेके पूर्व ही श्रीकृष्ण और बलराम द्वारा मायावादियोंके विनाश किये जानेके कारण और उनके बाद आदिबुद्ध द्वारा असुर-मोहनलीला प्रकट करनेके कारण मायावादी लोग इन २००० वर्षोंके भीतर वैष्णवोंपर किसी तरहका अत्याचार करनेमें समर्थ न हो सके।

शाक्यसिंह

भगवान्की लीला-पुष्टिके लिये आदिबुद्ध अर्थात् नवम अवतार बुद्धके शक्त्यावेशरूपमें किसी विशेष उद्देश्यके लिए माया-शाक्यसिंह बुद्धने ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व जन्म ग्रहण किया था। किसी किसीके मतसे इनका आविर्भाव काल ईसापूर्व ४७७ वर्ष है और किसी किसीके मतसे ईसा पूर्व ४५० वर्ष। इसी समयसे मायावादकी विचारधारा अनेक दिनोंका बाँध तोड़कर अत्यन्त प्रवल वेगसे प्रवाहित होना आरम्भ किया। गौतमबुद्धके

आविर्भावसे लेकर शंकराचार्यके आविर्भाव काल तक प्रायः १००० वर्ष तक यह विचारधारा नाना प्रकारके आकारोंको धारणकर इठलाती थी। आचार्य शंकरका मायावाद बौद्धवादका नामान्तर मात्र है—इसे हमने पहले ही दिखलाया है। इसके सम्बन्धमें नैष्ठिक अद्वैतवादी श्रीयुत राजेन्द्रनाथ घोषने 'अद्वैतसिद्धि' ग्रन्थकी भूमिकाके १० वें पृष्ठमें जो लिखा है, यहाँ पुनः उसका उल्लेख कर रहा हूँ—

"बुद्धदेवके लगभग ५०० वर्ष बाद तक अर्थात् ईसाके जन्मके पहले तक अर्थात् विक्रमादित्यके (ईसा पूर्व ५७ वर्ष) आविर्भाव तक **अद्वैतमत बौद्धमतके माध्यमसे ही प्रबल भावसे प्रचारित होता रहा।"**

उनके विचारसे विक्रमादित्यके बाद ५०० वर्ष तक अर्थात् आचार्य शंकरके आविर्भावके पहले तक शंकरके अद्वैतमतका भार बौद्धोंके हाथोंमें न्यस्त था। उन्होंने उक्त भूमिकाके छठे पृष्ठमें लिखा है—

"इस प्रकार इस समय **अद्वैत विचारधारा बौद्ध लोगोंके भीतर होकर प्रबल वेगसे बह रही थी।"**

(घोष महोदयके उल्लिखित कथनसे हम निःसन्देह इस तथ्य तक पहुँच सके हैं कि ये बौद्ध मायावादी हैं। हमारी समझसे यही उनका असली परिचय है। राजेन बाबू जो भीतर-ही-भीतर एक कट्टर बौद्ध थे, उनके इस कथन द्वारा रँगे हाथ पकड़े न जानेसे सर्वसाधारणको इन्हें पहचाननेके लिए बहुत ही कठिनाइयाँ झेलनी पड़तीं।) यहाँ मायावादकी जीवनीकी विभिन्न मूर्त्तियोंका कुछ कुछ परिचय न देनेसे मायावादकी जीवनीकी अंग-हानि होगी, यह सोचकर नीचे उनका आभास दिया जा रहा है।

दर्शन सप्तक

चार्वाकका **नास्तिक्य,** जिनका **जैन** या **अर्हत,** कणादका **वैशेषिक,** गौतमका **न्याय,** कपिलका **सांख्य,** पातञ्जलिका **योग** और जैमिनीकी **मीमांसा**—इन सात प्रकारकी मूर्त्तियाँ धारण कर मायावाद अपनी लपलपाती हुई जीभको विस्तार कर अचिन्त्य-द्वैताद्वैत-वैष्णव सिद्धान्तको निगल जानेके लिए उछल-कूद मचा रहा था। इस दर्शन सप्तककी प्रत्येक मूर्त्ति ही मायावादी है। इसका कारण यह है कि ये प्रकृतिको ही माया कहते हैं और प्राकृत मायिक विषयोंको ही लेकर जिनके वाद-विवाद और दर्शन-शास्त्र परिपुष्ट हैं, वे मायावादी कहे जाते हैं। अतः उपरोक्त सभी

दार्शनिक मत मायावादी हैं। उक्त दर्शनसमूह बुद्धदेव और आचार्य शंकरके मध्यवर्त्ती कालमें अत्यन्त प्रबल हो उठे। उस समय कोई किसीकी श्रीवृद्धिको सहन न कर सकनेके कारण परस्पर तर्क-वितर्क और युद्ध द्वारा अपनी-अपनी शक्तिको क्षीण कर दिया। इसके फलस्वरूप सौभाग्यवश चार्वाकका नास्तिक्य दर्शन मृत्युके मुखमें पतित हुआ। आर्हत या जैन लोग भी प्रायः उसी प्रकार अस्तित्वहीन हो पड़े। आचार्य शंकर मायावादकी ऐसी विभिन्न प्रकारकी मूर्त्तियोंको देखकर काँप उठे और परस्परके गृहविवादको मिटाकर एक समझौता करनेके लिए उन्होंने एक उपाय सोचा। उन्होंने उक्त प्रत्येक मतोंसे कुछ कुछ युक्तियाँ ग्रहणकर तथा उनके कुछ अंशका परित्यागकर उनमें परस्पर सामञ्जस्य करनेके बहाने अपने मतवादकी पुष्टि की। असलमें सूक्ष्मरूपसे विचारकर देखनेसे स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि उपरोक्त सातों दर्शन, बुद्धका शून्यवाद और शंकरका ब्रह्मवाद सब मिलाकर कुल नवौ दर्शन मायावादके अन्तर्गत हैं। पहले कहे गये सातों दर्शनोंको मायावादी कहनेका कारण प्रदर्शन करना वर्त्तमान लेखमें असंभव होनेके कारण उस विषयमें निस्तब्ध रहा। आवश्यक होनेपर उस विषयपर पृथक् लेखमें क्रमशः आलोचना की जायगी।

भर्त्तृहरि

श्रीलशंकरके आविर्भावके लगभग १५० वर्ष पहले भर्त्तृहरिने एक उपनिषद् सम्प्रदायकी सृष्टि कर मायावादकी एक नयी धारा इस जगत्में प्रवाहित की है। उन्होंने बौद्धयुक्तियोंका अवलम्बनकर उपनिषदोंके सिद्धान्तोंको स्थापन करके उपनिषद् सम्प्रदायकी सृष्टि की थी तथा हिन्दू धर्मके नामसे बौद्धधर्मको जगत्में चालू करनेके लिए बहुत ही चेष्टा की थी। भर्त्तृहरि बौद्ध-अमरसिंहके समसामयिक थे। बौद्ध-शबर स्वामीकी क्षत्राणी स्त्रीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। अमरसिंह भी उक्त शबर स्वामीकी शूद्रा स्त्रीके गर्भसे पैदा हुए थे—हमने इसे पहले ही कहा है। अतः दोनों परस्पर भाई हैं। अमरसिंह बौद्ध धर्मावलम्बी थे—इसमें तनिक भी मतभेद नहीं है। हो सकता है, आचार्य शंकर भर्त्तृहरिके ग्रन्थ आदिसे अपने मायावाद अर्थात् प्रच्छन्न बौद्ध मतका प्रचार करनेके लिए अपने अनुकूल प्रमाणादिका संग्रह किया होगा। भर्त्तृहरिका उपनिषद्-सम्प्रदाय बौद्ध मायावादका ही प्रचारक था—इसमें सन्देहकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

मायावादका सच्चा स्वरूप
गौड़पाद

मायावादके इतिहासकी आलोचना करनेके लिये श्रीगौड़पादका इतिहास हमें प्रधानरूपसे आलोक प्रदान करेगा। इसलिये उनके जीवन-चरित और सिद्धान्तोंकी विवेचना करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। आचार्य शंकरके साथ इनका अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध ही नहीं है, अपितु आचार्यके जितने भी सिद्धान्त हैं, इन्हीं गौड़पादके विचारोंके ऊपर भित्ति स्थापनकर निर्मित हुए हैं। आचार्य शंकरके गुरु गोविन्दपाद हैं और गोविन्दपादके गुरु गौड़पाद हैं। इस तरह गौड़पाद आचार्य शंकरके दादागुरु होते हैं। कोई-कोई गौड़पादको गौरपाद भी कहते हैं। गोविन्दपाद द्वारा रचित कोई ग्रन्थादि नहीं हैं। असलमें गौड़पाद ही शंकराचार्यके गुरु हैं। शंकर-युगमें मायावादने जैसा भीषण आकार धारण किया है, उससे भारतीय सनातन हिन्दू समाज 'मायावादी' कहनेसे एकमात्र शंकराचार्य और उनके अनुयायियोंको ही लक्ष्य करता है। अतएव उनके सम्बन्धमें हमें जाननेके लिए उनके यथार्थ गुरु या आदर्श शिक्षागुरुके सम्बन्धमें कुछ-कुछ जानना विशेष आवश्यक है। हरिवंशमें श्रीगौड़पादके सम्बन्धमें वर्णन पाया जाता है—

पराशरकुलोत्पलः शुकोनाम महायशाः।
व्यासादरण्यां संभूतो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन।।
स तस्यां पितृकन्यायां वीरिण्यां जनयिष्यति।
कृष्णं गौडं प्रभुं शम्भुं तथा भूरिश्रुतं जयम्।।
कन्यां कीर्त्तिमतीं षष्ठीं योगिनीं योगमातरम्।
ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषी मनुहस्य च।।

अर्थात् पराशरके पुत्र व्यास, व्यासके पुत्र शुक और शुकके पुत्र गौड़ हैं तथा शुककी कन्या महिषीके गर्भसे ब्रह्मदत्त नामक व्यक्ति पैदा हुए।

कोई-कोई श्रीमद्भागवतमें 'शुक कन्यायां ब्रह्मदत्तं अजिजनत्' देखकर समझते हैं कि परीक्षितको उपदेश देनेवाले भी यही शुक हैं। परन्तु यह उनकी भ्रान्त धारणा है। इस विषयको मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करने वाले शुकदेवजी जावालिकी कन्या वीटिकाके गर्भसे पैदा हुए थे। वे बाल-ब्रह्मचारी तथा बाल्यकालसे ही संसार-त्यागी थे। **अतएव उन आकुमार ब्रह्मचारी अर्थात् अविवाहितको कोई**

कन्या होनेकी संभावना नहीं। हरिवंशमें वर्णित शुकके सम्बन्धमें ही गार्हस्थ्य आदि व्यवहार प्रयोज्य हैं। श्रील श्रीधरस्वामिपादकी उक्त श्लोककी टीकासे विदित होता है कि इन गृहस्थ शुकका दूसरा नाम छाया शुक भी है। उनकी टीकाका वह प्रासंगिक अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

'यद्यपि शुक उत्पत्त्येव विमुक्तसंगो निर्गतस्तथापि विरहातुरं व्यास मनुषान्तं दृष्ट्वा (छाया शुकं) निर्माय गतवान्। तदभिप्रायेनैवायं गार्हस्थ्यादिव्यवहारः इत्यविरोधः। स च ब्रह्मदत्तो योगी गवि वाचि सरसत्याम्।'

देवी भागवतमें इन्हीं छायाशुकके ही पुत्रके रूपमें श्रीगौड़पादका नाम उल्लिखित हुआ है। किसी-किसी का कहना है—श्रीगौड़पादने अपने पिता छायाशुकका शिष्यत्व ग्रहण किया था। एक दिन छायाशुकके पिता व्यासका चित्त घृताची नामकी एक अप्सराको देखकर चंचल हो गया और वहीं उनका वीर्य स्खलित हो गया। उन्होंने उस वीर्यको अरणिके गर्भमें (वनमें) फेंककर छायाशुकका जन्मदान किया था। इसी शुकने अपने पिताकी कन्या अर्थात् अपनी सहोदरा बहन वीरिणीके गर्भमें आचार्य शंकरके दादागुरु श्रीगौड़पादको जन्म दिया था। इस प्रकार कलिकालमें पैदा होकर गौड़पादने अपनी पाण्डित्य-प्रतिभासे तत्कालीन जगत्को मुग्ध कर दिया था। गौड़पादका नाम मायावादके इतिहासमें अत्यन्त उल्लेखयोग्य है। सांख्यकारिका और माण्डूक्यकारिका उनकी अक्षय कीर्त्तियाँ हैं। उनकी उक्त दोनों कारिकाएँ ही मायावादके प्राण हैं।

गुरुके मतका खण्डन

आचार्य शंकरने गौड़पादकी उक्त दोनों कारिकाओंका अवलम्बन करके ही अपने भाष्यकी रचना की है। प्रसिद्ध मायावादी वाचस्पति मिश्र शंकरके प्रायः समकालीन व्यक्ति हैं। उन्होंने उक्त गौड़पादकी सांख्यकारिकाके ऊपर तत्त्वकौमुदी नामक एक टीकाकी रचना की है। उसमें उन्होंने गौड़पादकी कारिकाका खण्डन किया है। उस विषयकी जानकारीके लिए उसके इक्यावनवें (५१) कारिकाकी टीका द्रष्टव्य है। साधारणतः मायावादियोंका ऐसा स्वभाव होता आया है कि वे जिसके ऊपर निर्भर करते हैं, उसीका ध्वंस करते हैं अर्थात् जिस डाल पर बैठे हैं, उसीको काटते भी हैं। आचार्य शंकर भी भगवान् व्यासदेवके वेदान्त-सूत्रोंके ऊपर शारीरक भाष्यकी रचना करते समय अपने उक्त स्वभावका ही परिचय दिया है। कविराज

गोस्वामीकी भाषामें इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—'व्यास भ्रान्त बलि एक उठाइल विवाद।' (चैतन्य चरितामृत)। इसकी सत्यताके सम्बन्धमें दो-एक प्रमाणोंको उद्धृत किया जा रहा है—

शंकराचार्यने वेदान्त सूत्रोंको अपने मतके अनुकूल व्याख्या करनेकी चेष्टा की है। किन्तु '*आनन्दमयोऽभ्यासात्*' (ब्र॰ सू॰ १/१/१२) सूत्रमें उनको अपने इस काममें बड़ी अड़चन पैदा हुई। वे उस सूत्रके 'आनन्दमय' शब्दकी व्याख्या अपने मतके अनुकूल करनेमें सफल न हो सके। उन्होंने उक्त द्वादश सूत्रसे लेकर उन्नीसवें सूत्र तककी व्याख्यामें जिस तरह वाक्य-विन्यासोंकी योजना की है, उसकी आलोचना करनेसे स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि वे व्यासदेवके उक्त सूत्रकी किसी प्रकार भी संगति न हीं कर सके हैं। अन्तमें हार मानकर उक्त सूत्रमें ही दोष दिखला दिया। वे कहते हैं—

'यत् कारणमभ्यासादिति स्वप्रधानत्वं ब्रह्मणः समर्थितम् 'तद्धेतुव्यपदेशाच्च' सर्वस्य च विकारजातस्य आनन्दमयस्य कारणत्वेन ब्रह्मव्यपदिश्यते।'

भावार्थ यह है कि वेदोंमें ब्रह्मका ही अभ्यास कहा गया है। ब्रह्म ही (आनन्द ही) सविकार ब्रह्मका (आनन्दमयका) कारण है। अतएव उक्त द्वादश सूत्रमें ब्रह्मको ही लक्ष्य किया गया है। और वहाँ 'आनन्दमय' न होकर 'आनन्द' होना ही संगत है।' ऐसा कहकर उन्होंने सूत्रमें ही दोष दिखलाया है। सूत्रमें दोष दिखलाना सूत्रकारकी ही भ्रान्ति प्रदर्शन करना है। वाचस्पति मिश्रने भी उनका पदाङ्कानुसरण कर—

"अस्य च युक्तायुक्तत्वे सूविभिरेवावगन्तव्ये इति कृतं पर दोषाद्धावनेन नः सिद्धान्त मात्र-व्याख्यान-प्रवृत्तानामिति" इत्यादि वचनों द्वारा गौड़पादकी कारिकाका खण्डन किया है अर्थात् जिसकी व्याख्या लिखने बैठे हैं, उन्हींका दोष दिखला रहे हैं। आचार्य चिद्विलासने भी श्रीहर्षके मतका खण्डन किया है एवं उनको शास्त्रार्थमें हराया है। ये दोनों शंकरपंथी मायावादी हैं। आचार्य शंकरके मतानुसार गुरुको जब ब्रह्मज्ञानशून्य और अविद्याग्रस्त अर्थात् अनवगत मूर्ख माना जाता है, तब अपने गुरुका दोष बाहर करनेमें बाधा ही क्या है? जिस गुरुको शास्त्रोंमें ***'साक्षाद्धरित्वेन समस्त शास्त्रैः'*** कहा गया है, उन्हीं गुरुको शंकरने '*अनवगतौ ब्रह्मात्मभावं स्यात्।*' (अज्ञानबोधिनी) कहा है।

शंकरका जन्म

मायावादके रक्षक, शून्यवादके पृष्ठपोषक, आधुनिक अद्वैतवादके प्रवर्त्तक तथा मायावादीकुलके चूड़ामणि श्रीपाद शंकराचार्यके जीवन-वृत्तान्तसे वर्त्तमान शिक्षित सम्प्रदायके प्रायः सभी लोग परिचित हैं, चाहे वह परिचय कुछ कम हो या अधिक। शंकर सम्प्रदायके अनेक बड़े-बड़े विद्वानोंने शंकर-विजय और शंकर-दिग्विजय आदि ग्रन्थोंमें शंकरकी जीवनी सम्बन्धी अनेक बातोंको लिपिबद्ध किया है। मध्वसम्प्रदायके मध्व-विजय तथा मणिमञ्जरी आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंमें भी शंकरके जीवन-चरितसे सम्बन्धित अनेकानेक घटनाओंका विवरण पाया जाता है। शंकर सम्प्रदाय और मध्व सम्प्रदाय परस्पर विरोधी सम्प्रदाय हैं। आचार्यकी प्रकृत जीवनीसे परिचित होनेके लिए उक्त दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंकी आलोचनाके सिवा कोई दूसरा पथ नहीं है। उल्लिखित ग्रन्थ ही पण्डित समाजमें प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थोंमें आचार्य शंकरकी जीवन-सम्बन्धी बहुत-सी बातें पायी जाती हैं। अतएव आचार्य शंकरके सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखना अनावश्यक समझता हूँ। आचार्य शङ्करके आविर्भाव कालके सम्बन्धमें बहुतसे मत प्रचलित हैं। **मेरा अनुमान है, लगभग ७०० ई. में उनका जन्म हुआ था। उनका जन्म केरल देशके अन्तर्गत 'चिदम्बरम्' नामक एक गाँवमें विशिष्टा नामकी एक ब्राह्मणीके गर्भसे हुआ था। विश्वजीत नामक एक विप्रने विशिष्टाका पाणिग्रहण किया था। बहुत दिनों तक पुत्र न होनेसे विश्वजीत बड़े दुःखी हुए और अन्तमें घर-गृहस्थीसे नाता तोड़कर विशिष्टाको घरपर अकेला छोड़कर जंगलका रास्ता लिया। ये विश्वजीत ही बादमें शिवगुरुके नामसे प्रसिद्ध हुए।**

इधर विशिष्टा घरमें अकेली रह गईं। उन्होंने चिदम्बरम्के ग्राम्य-देवता महादेवकी उपासनाको अपने जीवनका लक्ष्य स्थिर किया। उन्होंने उस शिवमंदिरके प्रधान-पुजारीको (सेवाईतको) अपना गुरु बनाकर श्रीमहादेवके दैनिक पूजन-अर्चनमें ही अपना तन-मन-धन—सर्वस्व न्योछावर कर दिया। किन्तु कुछ ही दिनोंके बाद अकस्मात् वे गर्भवती देखी गईं। अब यह बात चारों तरफ फैल गई। गाँवके नैतिक समाजने कलंकिनी और चरित्रहीना समझकर उन्हें समाजसे बहिष्कृत कर दिया। विशिष्टाने लज्जा, अपमान और लोकोपवादसे मर्माहत होकर आत्महत्या करनेका दृढ संकल्प कर लिया। ठीक उसी **समय विशिष्टाके पिता मघमण्डनको स्वप्नमें आज्ञा**

हुई—"विशिष्टाके गर्भमें शंकर विद्यमान हैं। सावधान, उसकी मृत्यु न हो।" मघमण्डन स्वप्नादेश प्राप्तकर तत्क्षण अपनी कन्या विशिष्टाके पास आये और उसे आत्महत्या करनेसे रोका। कुछ ही दिनोंमें उन्हींकी देख-रेखमें विशिष्टाके गर्भसे शंकरका जन्म हुआ।

शङ्कर एक प्रतिभासम्पन्न शिशु थे। उपनयन होनेके पहले ही उन्होंने संस्कृत-व्याकरण और कोष समाप्त कर डाला। आठवें सालमें उपनयन होनेपर वे वेदशास्त्रके अध्ययनमें लग गए। थोड़े ही समयमें वेदोंको पढ़ लेनेके बाद छः दर्शनों और उपनिषदोंका अध्ययन कर लिया। कहते हैं—बचपनसे ही वे संसारके प्रति उदासीन थे। अध्ययन और शिवकी उपासनामें ही उनका सारा समय बीतता।

एक समय बालक शंकर अपनी माताके साथ किसी दूसरे गाँवको जा रहे थे। रास्तेमें एक छोटी-सी नदी पार करनी पड़ती थी। वे दोनों उस नदीको पार करने लगे। अकस्मात् माताने देखा, तो क्या देखती है कि बालक शंकर नदीकी धारामें डूब रहा है। अपने इकलौते प्राण-प्रियको इस तरह डूबते देखकर माताका हृदय टूक-टूक हो गया। उसके सब उद्योग व्यर्थ सिद्ध हुए। बड़ा ही करुणाजनक दृश्य था। असहाय माता फूट-फूटकर विलख रही थी। उस समय शङ्करने मातासे संन्यास लेनेकी अनुमति माँगी—"माताजी! मेरा विवाह करनेके पहले ही यदि आप संन्यास ग्रहण करनेकी मुझे अनुमति दे दें, तब मैं आत्म-रक्षा करनेकी चेष्टा करूँ।" अगत्या जननीने पुत्रकी बात सुनी और संन्यास लेने की आज्ञा दे दी। शङ्कर जलसे निकलकर ऊपर आए और माताके साथ घर लौट आए।

—(१३०८ बंगाब्दमें प्रकाशित शिवनाथ शिरोमणिकृत शब्दार्थ मंजरीके परिशिष्टसे उद्धृत)

आचार्यके उक्त जीवन चरितसे पता चलता है कि वे शास्त्रकी वाणियोंसे अथवा अन्य सान्त्वनापूर्ण वचनोंके द्वारा माताको समझा बुझाकर उनसे अपने जगन्मङ्गलकर संन्यास धर्मको ग्रहण करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेमें समर्थ न हो सके। बल्कि उन्होंने छल करके माताके वात्सल्यका सुयोग लेकर एक छोटी-सी नदीमें डूबनेका बहाना दिखलाकर अपने यति धर्मके लिए आज्ञा प्राप्त की थी। अन्यान्य महापुरुषोंके जीवनमें प्रायः ये बातें नहीं पायी जाती हैं। जगत्-गुरु श्रीचैतन्य देवने संन्यास ग्रहण

करनेके समय अपनी वृद्धा शचीदेवी और युवती स्त्री विष्णुप्रियादेवी—दोनोंको समझा-बुझाकर उनसे संन्यास ग्रहण करनेकी आज्ञा प्राप्त करनेका अभिनय दिखलाया है। अवश्य यहाँ श्रीचैतन्यदेव स्वयं भगवान्‌के अवतार हैं और शङ्कर उनके प्रियभक्त शङ्करके अवतार हैं। तात्पर्य यह है कि आचार्य शंकर जहाँ अपने युक्ति-तर्कको स्थापन करनेमें असमर्थ होते, वहाँ छल चातुरी और युद्ध इत्यादि तरह-तरहकी वृत्तियोंका अवलम्बन करनेमें भी नहीं हिचकते थे। जैसा भी हो, छल-बल और कौशल—जिस तरहसे भी क्यों न हो अपना काम निकालनेकी प्रथा सभी समयोंमें दृष्टिगोचर होती है।

आचार्य शङ्करने अपनी पाण्डित्य-प्रतिभासे अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना की है। ब्रह्मसूत्र और अपने मतपोषक कतिपय उपनिषदोंके ऊपर भाष्य रचनाकर जगत्‌में अपनी कीर्त्ति रख गये हैं। अपने मतकी स्थापना और प्रचारके लिए—दिग्विजयकी आशा लेकर उन्होंने नाना देशोंका भ्रमण किया था। उनकी दो एक दिग्विजयकी कहानियाँ नीचे दी जा रही हैं—

शंकर विजय

(क) आचार्य शङ्करकी जीवनी पढ़नेसे विदित होता है कि उनके साथ बहुतसे स्मार्त्त, शैव, शाक्त और कापालिक विद्वानोंका शास्त्रार्थ हुआ था। महाराष्ट्र देशमें रहने वाले **उग्रभैरव** नामक एक कापालिकने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। किन्तु शंकर उसके चित्तका सुधार करनेमें असफल होकर उसकी ही युक्तियोंपर विश्वासकर स्वयंको उसे केवल आत्म-समर्पण ही नहीं किया, अपितु अपना सिर भी उसे समर्पण कर दिया। पादपद्मने, जो आचार्यके एक प्रिय शिष्य थे, कापालिक उग्रभैरवके हाथसे उनकी रक्षा की थी। इससे पता चलता है कि उक्त कापालिककी युक्तियोंका खण्डन करना तो दूर रहे, उल्टे उसकी उन युक्तियोंसे प्रभावित होकर शंकराचार्य अपना मस्तक तक उसे समर्पण करनेके लिए बाध्य हो गए थे।

(ख) कर्नाटक देशमें **क्रकच** नामक एक व्यक्ति कापालिकोंका गुरु था। उसके साथ भी शंकरका संघर्ष हुआ। शंकर शास्त्रार्थके द्वारा उसे अपने मतमें लाने में असमर्थ होकर उज्जैनीके तत्कालीन राजा सुन्धवा द्वारा युद्धमें उसका वध करवा डाला। यहाँ शंकरके योगबल अथवा युक्तिबलने कुछ भी काम नहीं किया।

(ग) **'अभिनव गुप्त'** नामक आसाम प्रदेशके एक शाक्त आचार्यके साथ शंकराचार्यका मायावादको लेकर शास्त्रार्थ हुआ। अभिनवगुप्त शंकरके प्रभाव और ऐश्वर्यसे मुग्ध होकर उनका शिष्य हो गया। किन्तु आचार्य अपने मायावादके सिद्धान्तोंसे अपने शिष्यका हृदय न जीत सके। इसका प्रमाण यह है कि अभिनव गुप्तके षडयन्त्र द्वारा शंकर विषमय भगन्दर रोगके शिकार हो गये थे—ऐसा प्रवाद है। आश्चर्यकी बात है, दूसरोंके द्वारा (अभिचार प्रयोग) इस प्रकार किसी रोग द्वारा आक्रान्त होनेकी बात चिकित्सा-वैज्ञानिक भी स्वीकार नहीं करते। जैसा भी हो, अभिनवके चरित्रपर ऐसा दोषारोप करनेसे प्रतीत होता है कि यद्यपि अभिनव गुप्त शंकरके ऐश्वर्यसे मुग्ध होकर शिष्य हो गया था, तथापि युक्ति और तर्कमें शंकरसे उसका मेल नहीं था। इसीलिए पद्मपादने एक मिथ्या आरोप लगाकर उसको मार डाला।

(घ) शंकर जब उज्जैनी नगरमें गये थे, तब आचार्य **भास्कर**के साथ उनका मायावादके सिद्धान्तों को लेकर वाद-विवाद हुआ। आचार्य भास्कर शैव-विशिष्टाद्वैत मतके प्रचारक थे। शंकर उन्हें किसी प्रकार भी अपने मतमें न ला सके, बल्कि स्वयं भास्करके साथ शास्त्रार्थमें पराजित हो गए। **भास्करने वेद और वेदान्तपर भाष्य रचनाकर शंकरके मायावादका सुष्ठुरूपसे खण्डन किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने वेदान्त भाष्यमें शंकरको मायावादी महायानिक बौद्ध प्रमाणित कर दिया है।** उन प्रमाणोंका उल्लेख मैंने पहलेही 'शंकर महायानिक बौद्ध हैं'—इस प्रसङ्गमें किया है। यहाँ मैं उनका पुनरुल्लेख करना अनावश्यक समझता हूँ। इससे प्रमाणित होता है कि शंकर भास्कराचार्यको अपने सिद्धान्तोंसे प्रभावित तो कर ही नहीं सके, बल्कि उल्टे वहीं उनका महायानिक बौद्धका असल स्वरूप प्रकाशित हो पड़ा था।

(ङ) मण्डन मिश्रकी पत्नी उभय भारती एक परम विदुषी महिला थीं। आचार्य शंकर द्वारा मण्डन मिश्रके पराजित होनेपर उभय भारतीने शंकरको रति या काम शास्त्रसे सम्बन्धित शास्त्रार्थमें परास्त कर दिया। शंकर एक स्त्रीके निकट पराजित होकर बड़े संकटमें पड़े। कोई दूसरा उपाय न देखकर वे अपने योगबलसे किसी राजाके मृत शरीरमें प्रवेशकर राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश कर गए और राजमहिषीके निकट एक मास तक काम या रतिशास्त्रके सम्बन्धमें शिक्षा प्राप्त करते रहे। इससे भी शंकरकी महानताका परिचय नहीं मिलता। किन्तु किसी भी संन्यासीके

पक्षमें इस प्रकार रतिशास्त्रकी आलोचना या शिक्षा करनेसे उसका यतिधर्म नष्ट हुआ या नहीं—यह विवेचना करनेकी बात है। हमारे विचारसे कोई भी नैष्ठिक ब्रह्मचारी या संन्यासी यदि 'काम' शास्त्रके विधानोंसे अपरिचित है, तो उसके लिए यह प्रशंसाकी बात है। उसकी यह अनभिज्ञता किसी प्रकार भी निन्दनीय नहीं। ऐसी अवस्थामें अपने विजयकी लालसासे एक पराई स्त्रीसे रति शास्त्रकी शिक्षा ग्रहण करना शंकर जैसे यतिको शोभा नहीं देता।

(च) **मण्डन मिश्र** ही शंकर-विजयके प्रधान विजय-स्तम्भ हैं। मण्डन मिश्र उस समय स्मार्त्त और कर्म-मीमांसाके एक प्रकांड और प्रख्यात आचार्य थे। शंकरकी विजय केवल बौद्ध, कापालिक, शाक्त, स्मात्त और कर्मियों तक ही सीमित थी। मण्डन मिश्र को पराजित कर उन्होंने जो विजयका डंका बजाया था, उससे उन्होंने केवलमात्र भोगपर कमके ऊपर ही विजय पायी थी। कपालिकोंकी प्राकृत (भौतिक) तांत्रिक उपासना, शाक्तोंके पंचमकार और वामाशक्तिकी आराधना, जैमिनिके भोगजनक कर्म-जड़वाद और स्मार्त्तोंकी पञ्चोपासना—इन सबसे ज्ञानकी श्रेष्ठता तो स्वतः सिद्ध है। अतः उन उन क्षेत्रोंमें विजयका डंका बजाना कोई विशेष महनीयताका परिचायक नहीं। आचार्य भास्करने इस बातको उसी समय प्रमाणित कर दिया था।

(छ) आचार्यके जीवनमें और भी एक बात लक्ष्य करने योग्य है। वह बात यह है कि आचार्य पर जब कभी कोई विपत्ति आयी, उनके शिष्य पद्मपादने उनकी रक्षा की है। आचार्यके जीवनाकाशमें पद्मपाद निर्मल पूर्णचन्द्रकी तरह प्रकाशित हैं। **पद्मपादने शारीरक भाष्य प्रकाशित होनेके पहले ही वेदान्त-भाष्यकी रचना की थी।** कुछ दिनों बाद वही भाष्य उनके मातुल द्वारा चुराए जानेपर वे बड़े दुःखित हुए। उनका हृदय टूक-टूक हो गया। इसे देखकर आचार्य शंकरने उन्हें आश्वासन दिया—"पद्मपाद! तुम कोई चिन्ता न करो। **तुम्हारे सूत्रभाष्यके पहले चार सूत्रोंका भाष्य मैंने कण्ठस्थ कर रखा है। तुम उसे श्रवण करो।"** इससे देखा जाता है कि आचार्य शंकरने पद्मपादकी वेदान्त टीकाको कण्ठस्थ कर अपने भाष्यकी रचनासे पहले ही उसे ज्यों-का-त्यों सुना दिया था। इस घटनाके बाद शंकरने जब सौराष्ट्र देशकी यात्रा की थी, उस समय उनका विख्यात मायावादी भाष्य पहले पहल प्रकाशित हुआ। पद्मपाद की पाण्डित्य प्रतिभा और क्रियाकलापकी

जैसी ख्याति सुनी जाती है, उससे प्रतीत होता है कि इनके भाष्यका अवलम्बन करके ही शंकरने अपने विख्यात भाष्यकी रचना की है। ऐसी अवस्थामें इन दोनोंमें आदि भाष्यकार आचार्य शंकरको माना जाय या पद्मपादको—यह विवेचनाका विषय है। अनन्तोगत्वा पद्मपाद शंकरके समस्त विषयोंमें रक्षक और अवलम्बन थे—इस बातको निःसंकोच रूपमें कहा जा सकता है।

(ज) तिब्बतके **बौद्ध लामा**के साथ शंकर शास्त्रार्थमें पराजित हुए। लामा तत्कालीन बौद्धोंमें जगद्‌गुरुके नामसे विख्यात थे। शास्त्रार्थ प्रारम्भ होनेके पहले दोनोंने प्रतिज्ञा की कि **जो हार जावेगा उसे तप्त तेल से भरे कड़ाहमें गिरकर प्राण परित्याग करने पड़ेंगे।** शास्त्रार्थमें पराजित होकर शंकरने पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उबलते हुये तेलके कड़ाहमें गिरकर आत्म-विसर्जन कर देहत्याग कर दिया। इस घटनाके सम्बन्धमें शिरोमणि महोदयने इस प्रकार उल्लेख किया है—

'आचार्य शंकरने बौद्ध जगद्‌गुरुसे शास्त्रार्थमें पराजित होकर अपनी प्रतिज्ञानुसार उबलते हुए तेलके कड़ाहमें गिरकर शरीर परित्याग कर दिया। इस प्रकार ८१२ ई॰ (?) में जगत्‌की एक उज्ज्वल ज्योति श्रीशंकराचार्यका देहावसान हुआ।'

—(शब्दार्थ मंजरीका परिशिष्ट)

स्मरण रहे कि आज भी तिब्बतमें उक्त 'शंकर-कटाह' विद्यमान है। लामा लोग उसे विजय-वैजयन्तीका स्मृतिचिह्न मानकर आदर और सम्मान करते हैं। शंकर विजयका यही सच्चा इतिहास है।

शंकरका प्रभाव

भक्तावतार शंकरसे लेकर भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेव तक लगभग १००० वर्षोंका अन्तर है। यहाँ इन बीचवाले वर्षोंके मायावादकी अवस्थाका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

बुद्धका कड़वा अवैदिक शून्यवाद शंकरके द्वारा केवल ऊपरसे वैदिक शर्करासे लपेटा जाकर जनतामें पुनः खूब आदर पाने लगा। इसका फल यह हुआ कि बौद्धधर्मकी जड़ प्रत्यक्षरूपमें उखाड़ फेंकने पर जन-समुदाय अपनेको बौद्ध कहनेके बदले हिन्दू कहने लगा। साधारणतः लोग हिन्दू-धर्म कहनेसे शङ्कराचार्यके प्रचारित धर्मको ही समझते हैं। अनेक पाश्चात्योंने भ्रमसे शंकरके प्रचारित धर्मको ही हिन्दू धर्म मानकर खण्डन किया है।

जैसा भी हो शंकराचार्यके आविर्भावसे यह एक बड़ा लाभ हुआ है—इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा? किन्तु **अचिन्त्य-द्वैताद्वैत सिद्धान्तभूत भगवान्की नित्य-सेवाको ही यथार्थ हिन्दूधर्म कहा जाता है।**

इन एक हजार वर्षोंमें मायावादकी अवस्था नितान्त शोचनीय रही है। कहीं इसे बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी है, तो कहीं इसकी धज्जियाँ उड़ायी गई हैं और कहीं-कहीं तो इसने प्राणोंको लेकर भाग छिपनेमें ही अपनी भलाई समझी है। हम यहाँ इसीका संक्षिप्त परिचय प्रदान कर रहे हैं।

यादवप्रकाश

पद्मपाद, सुरेश्वर, वाचस्पति मिश्र आदि विख्यात मायावादियोंके बाद यादव प्रकाश ही मायावादियोंके सर्वप्रधान आचार्य हुए। ये दक्षिण भारतके काञ्चिनगरमें रहते थे। उस समय यामुनाचार्य श्रीवैष्णव सम्प्रदायके एक अलौकिक मेधासम्पन्न पुरुष थे। इनकी अलौकिक विद्वता और असाधारण तर्क-पटुता देखकर यादव प्रकाशको उनके साथ आमने-सामने शास्त्रार्थ करनेका साहस न हुआ। आचार्य रामानुज इन्हीं यामुनमुनिके शिष्य थे। इन्होंने यादवप्रकाशके निकट वेदान्तका अध्ययन करते समय शंकरमतके अनेक दोष दिखलाए। इसपर यादव प्रकाशने अपने मतकी पुष्टिके लिए खूब चेष्टा की, पर रामानुजकी अकाट्य युक्तियोंके सामने उनकी एक न चली। रामानुजकी ऐसी प्रखर प्रतिभा देखकर वे ईर्ष्यासे जलने लगे और रामानुजको मार डालनेके लिए एक षड़यन्त्रकी रचना की। आचार्य रामानुजको यादवप्रकाशके इस षड़यन्त्रका पता चल गया। फिर भी उन्होंने यादवप्रकाशको केवल क्षमा ही नहीं किया, अपितु उनपर कृपाकर अपना शिष्य बना लिया। रामानुजकी ऐसी महान् उदारता और परम वैष्णवतासे यादवप्रकाश मुग्ध हो गए। उनका स्वभाव पूर्णतया बदल गया। अब वे वैष्णवोचित जीवन बिताने लगे।

आचार्य शंकरके जीवनमें भी कुछ ऐसी ही घटनाएँ उपस्थित हुई थीं। परन्तु आचार्य शंकरके जीवमें भी ऐसा ही प्रसंग उपस्थित हुआ था, किन्तु **अभिनव गुप्त**के प्रति कृपा न कर उसका वध किया गया था। इस विषयमें रामानुज आचार्यका चरित्र शंकराचार्यकी तुलनामें अधिक उज्ज्वल, महान् और माधुर्यमय प्रतीत होता है। रामानुजाचार्यने यादवप्रकाशको, जो उन्हें मार डालना चाहता था, केवल क्षमा ही नहीं किया, अपितु कृपाकर उद्धार भी कर दिया। यह घटना श्रीरामानुजाचार्यको शंकराचार्यकी अपेक्षा

अधिक प्रतिभा-सम्पन्न और सहिष्णु प्रमाणित करती है। इस तरह भगवद्भक्तोंकी श्रेष्ठता सभी समयोंमें सभी क्षेत्रोंमें समानरूपसे घोषित है। उस समय रामानुजकी प्रबल युक्तियोंसे खण्डित-विखण्डित होकर मायावादकी बड़ी दुर्गति हुई। इस तरह विशिष्टाद्वैतवादकी विजय-वैजयन्ती सर्वत्र लहराने लगी।

श्रीधरस्वामी

श्रीधरस्वामीका जन्म गुजरात प्रदेशमें हुआ था। उनके आविर्भाव-कालके सम्बन्धमें कोई प्रामाणिक सामग्री न होनेके कारण कुछ अधिक कहनेका उपाय नहीं। फिर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि अद्वैतवादियोंने उनकी स्थितिकालके सम्बन्धमें जो अटकलें लगायी हैं, वे बिल्कुल निराधार हैं। **मध्वमुनि**ने अपने ग्रन्थोंमें उनका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है—केवल इसीके आधारपर उनका समय मध्व के बाद स्थिर करना युक्तियुक्त नहीं। श्रीधरस्वामीने वेदान्त या उपनिषद आदिका कोई भाष्य नहीं लिखा है। यही कारण है कि मध्वाचार्यने अपने ग्रन्थोंमें उनका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, अन्यथा वे अवश्य ही श्रीधरस्वामीका उल्लेख करते। **श्रीधरस्वामीने अपने गीता-भाष्यमें एक शङ्करका ही उल्लेख किया है।** इससे प्रतीत होता है कि वे शङ्करके पश्चात् और मध्वसे पूर्व किसी समय वर्त्तमान थे। श्रीरामानुजाचार्यने प्रधानतः विष्णुपुराणका अवलम्बनकर अपने श्रीभाष्यकी रचना की है। आचार्य श्रीधरस्वामीने भी विष्णुपुराणकी एक टीका लिखी है। यदि रामानुजको इनकी टीकाका पता होता, तो वे अवश्य ही अपने ग्रन्थोंमें उसका उल्लेख करते तथा उसके वचनोंको प्रमाण-स्वरूप उद्धृत करते। किन्तु देखा जाता है कि **न तो रामानुजने श्रीधरस्वामीका तथा न ही श्रीधरस्वामीने श्रीरामानुजका कहीं उल्लेख किया है।** ऐसी अवस्थामें यह निश्चित रूपमें कैसे कहा जा सकता है कि इनमें कौन आगे हुआ और कौन पीछे? मायावादी अद्वैतपंथी लोग आज भी उनको अपने सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त बनानेके लिये खींचा-तानी कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि श्रीधरस्वामीने पहिले-पहल किसी अद्वैतवादीके सङ्गके प्रभावसे अद्वैतमत ग्रहण कर लिया था। इस बातका कुछ-कुछ आभास उनकी रचित टीकाओंसे मिलता है। उस समय **परमानन्द तीर्थ नामक एक वैष्णव संन्यासी शुद्धाद्वैत मतका प्रचार करते थे। ये श्रीनृसिंह देवके उपासक थे। शुद्धाद्वैतके आदि आचार्य श्रीमद्विष्णु स्वामीका स्थितिकाल शंकराचार्यसे बहुत**

पहले है। वे आदिविष्णु स्वामीके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इन्हींकी शिष्य-परम्परामें परमानन्द तीर्थ एक संन्यासी प्रचारक थे। इन्हींकी कृपासे श्रीधरस्वामीने अद्वैतमतका परित्यागकर शुद्धाद्वैत मतमें दीक्षा ग्रहण की थी। अब इनको इस बातका विश्वास हो गया था कि अद्वैतमतके शुष्क ज्ञान द्वारा यथार्थ मोक्ष प्राप्त करना कठिन ही नहीं, अपितु बिल्कुल असम्भव है तथा भगवद्भक्ति ही मोक्षका एकमात्र उपाय और उपेय, दोनों हैं। उन्होंने गीताकी टीकामें लिखा है—

"श्रुति-स्मृति-पुराण-वचनान्येवं सति समञ्जसानि भवन्ति, तस्माद्भगवद्भक्तिरेव मुक्तिहेतुरिति सिद्धम्। * * * परमानन्द-श्रीपादाब्ज-रजःश्री-धारिणाधुना श्रीधरस्वामि-यतिना कृता गीता-सुबोधिनी।"

यदि मायावादियोंका यह कथन सत्य मान भी लिया जाय कि श्रीधरस्वामी मायावादी सम्प्रदायके हैं, तो क्या अद्वैतवादी उनके गीताके उपरोक्त सिद्धान्तको स्वीकार कर सकते हैं? यदि वे स्वीकार नहीं करते तो उनको मायावादी सम्प्रदायके अन्तर्गत घसीटनेकी व्यर्थ चेष्टा ही क्यों करते हैं?

श्रीधरस्वामीकी गीताकी टीकाके सम्बन्धमें एक आश्चर्यजनक इतिहास है। वह घटना इस प्रकार है—एक समय श्रीधरस्वामी समस्त तीर्थोंका भ्रमण करते-करते काशीमें पधारे। उन्होंने वहाँ कुछ दिनों तक ठहरकर गीताकी सुबोधिनी नामक एक टीका लिखी और सर्वप्रथम वहाँके पण्डित-समाजमें उसे चालू करनेके लिए प्रयत्न किया। टीकाके सिद्धान्तोंको अद्वैतवादका विरोधी देख मायावादी लोग बड़े चिन्तित हुए और उसमें दोष निकालनेके लिये नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगे। किन्तु श्रीधरस्वामीने वहाँकी मायावादी पण्डित-मण्डलीको अपने प्रखर पाण्डित्य और तर्क-पटुतासे परास्त कर दिया। इसपर भी उन लोगोंने उनकी टीकाको मान्यता न दी। अन्तमें दोनों पक्षोंके लोगोंने विश्वनाथके निकट जाकर टीकाकी मान्यताके सम्बन्धमें उनको अपना निर्णय देनेके लिये प्रार्थना की। वैष्णवराज शम्भुने पण्डितोंको स्वप्नमें अपना निर्णय निम्नलिखित श्लोकमें बतलाया था—

"अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः।।"

इस श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीधरस्वामीने अद्वैतवादियोंको परास्त किया था। **इस तरह परमानन्द तीर्थ द्वारा श्रीधरस्वामीकी और श्रीधरस्वामी द्वारा अन्यान्य मायावादियोंकी पराजय हुई थी।**

श्रीबिल्वमङ्गल

दक्षिण प्रदेशमें कृष्णा-वेण्णा नदीके तटपर एक ग्राममें श्रीबिल्वमङ्गलका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम रामदास था। किसी-किसीके मतसे बिल्वमङ्गलका पूर्व नाम **शिह्लनमिश्र या चित्सुखाचार्य** था। वल्लभ-दिग्विजय ग्रन्थके अनुसार इनका उदयकाल शककी आठवीं शताब्दी है। ये अपने पूर्व जीवनमें अद्वैतवादी थे, बादमें इन्होंने मायावादका परित्यागकर वैष्णव-त्रिदण्डि-संन्यास ग्रहण किया था। **शंकर सम्प्रदायकी द्वारका मठकी परम्परा-तालिकामें चित्सुखाचार्य (कल्यब्द २७१५) बिल्वमङ्गलका नाम पाया जाता है।** 'वल्लभ-दिग्विजय' ग्रन्थके अनुसार बिल्वमङ्गल द्वारकाधीशकी स्थापना करनेवाले राजविष्णुस्वामीके प्रधान शिष्य थे और सात सौ (?) वर्षों तक वृन्दावनमें ब्रह्मकुण्डके तटपर भजन किये थे। इन्होंने 'कृष्णकर्णामृत' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की है; इसीसे इनका नाम लीलाशुक हुआ। बिल्वमङ्गलने किस तरह अद्वैतमतका परित्याग किया तथा किस तरह वे कृष्ण-सेवाके माधुर्य द्वारा आकृष्ट हुए थे—इसका वर्णन उन्होंने अपने स्वरचित इस श्लोकमें किया है—

अद्वैतवीथी पथिकैरुपास्याः स्वानन्द सिंहासनलब्धदीक्षाः।
हठेन केनापि वयं शठेन दासीकृता गोपवधू-विठेन।।

अर्थात् अद्वैतपथके पथिकों द्वारा सेवित और आत्मानन्दके सिंहासनपर आरूढ़ होकर भी मैं गोपीलम्पट कृष्णनामके किसी शठ द्वारा बलपूर्वक उनकी दासी बनाई गई हूँ।

त्रिविक्रमाचार्य

अच्युतप्रेक्ष उस समय मायावादियोंमें माने हुए आचार्य थे। इसी समय शंकरानन्द या विद्याशंकर, त्रिविक्रमाचार्य और पद्मनाभाचार्य मायावादके प्रख्यात प्रचारक हुए थे, जिन्होंने शंकरके अद्वैतवादकी तीव्र साधना की है तथा उसका विपुल प्रचार-प्रसार किया है। ये सब लोग आनन्दतीर्थ मध्वमुनिके समसामयिक थे। मध्वमुनिका जन्म दक्षिण भारतके दक्षिण कनाड़ा (मंगलूर) जिलेके अन्तर्गत उडुपीक्षेत्रसे सात मील दक्षिण-पूर्व पाजकाक्षेत्रमें मध्यगेह नामक एक वेद-वेदान्त पारंगत ब्राह्मणके घर १४४० शकाब्दमें, मतान्तरसे ११६० शकाब्दमें हुआ था। इनकी माताका नाम वेदविद्या था। इन्होंने वेदान्तके द्वैतवादका स्थापनकर मायावादकी सम्पूर्ण युक्तियोंको

खण्ड-खण्डकर उड़ा दिया था। मध्वाचार्यके साथ उक्त चारों मायावादी आचार्योंका आमने-सामने शास्त्रार्थ हुआ था। रामानुजाचार्यने जैसे यादव प्रकाशके शिष्य होनेका नाटक किया था, मध्वाचार्यने भी इसी प्रकार **अच्युतप्रेक्ष**को अपने मतमें लानेके लिए उसके शिष्य होनेका अभिनय दिखलाया था। मध्वाचार्यकी अलौकिक विद्वता, असाधारण तर्कपटुता और अटूट भजन-बलके सामने अच्युतप्रेक्ष परास्त हो गए। विद्यारण्य शास्त्रार्थमें परास्त होनेपर भी अपना मत परित्याग न कर सके, किन्तु त्रिविक्रमाचार्य और पद्मनाभाचार्यको माध्वाचार्यने शास्त्रार्थमें परास्तकर अद्वैतमतसे उद्धार किया और उन्हें वैष्णव मतमें दीक्षित किया।

त्रिविक्रमाचार्य अद्वैतमतके उद्भट विद्वान् आचार्य थे। इन्हींके पुत्र नारायणाचार्य **'मध्वविजय'** और **'मणिमंजरी'** नामक प्रसिद्ध ग्रन्थोंके रचयिता हैं। पीछे ये त्रिविक्रमाचार्य ही मध्वसम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य हुए थे। इसलिए वे द्वैत और अद्वैत दोनों दर्शनोंमें पारंगत थे। उन्हींके निकट शिक्षा प्राप्तकर नारायणाचार्यने शंकराचार्य और मध्वाचार्यके सम्बन्धमें अनेक तथ्योंका उद्घाटन जगतके सामने किया है। **अतः शंकर और मध्व दोनों सम्प्रदायोंके लिए श्रीनारायणाचार्यके ग्रन्थोंको प्रामाणिक रूपमें ग्रहण करना कर्त्तव्य है।** 'मणिमंजरी' मध्वसम्प्रदायके किसी आचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ होनेके नाते साम्प्रदायिक दोषोंसे दूषित है—यह कथन नितान्त अयुक्तियुक्त है। इसी समय देखा जाता है कि मध्वाचार्य अपनी अलौकिक तर्क-प्रतिभा और प्रबलतम शास्त्रप्रमाणोंके प्रतापसे शंकर सम्प्रदायके प्रधान दोनों आचार्योंको पराजित किया। किन्तु शास्त्रार्थमें पराजित होनेपर भी निरपेक्षताके अभावमें तथा पूर्व-संस्कारके कारण बाकी दो आचार्योंके हृदयक्षेत्रमें मायावादकी अशुद्ध क्षीण धारा प्रवाहित होती रही। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस समय मायावादने किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर तत्त्ववादी मध्वके निकट अपना मस्तक मुण्डन कराया था।

द्वितीय शंकर—विद्यारण्य

विद्यारण्यका दूसरा नाम **माधव** था। उनके पिताका नाम सायन था। इसीलिये कोई-कोई विद्यारण्यको **सायन-माधव** भी कहते हैं। अपने असाधारण पाण्डित्य और गम्भीर व्यक्तित्वसे विद्यारण्यने शंकर-सम्प्रदायमें अपना इतना ऊँचा आसन जमा लिया था कि कहा जाता है—आचार्य

शंकरके बाद विद्यारण्यके समान इतना बड़ा विद्वान कोई नहीं हुआ है। **इसलिये शंकर–सम्प्रदायमें उनको 'शंकरका अवतार' और 'द्वितीय शंकर' माना गया है।** यही मध्व–सम्प्रदायमें अक्षोभ्यमुनिका अभ्युदयकाल है। ये न्यायशास्त्रके अद्वितीय विद्वान् थे। इन्होंने उक्त द्वितीय शंकरको शास्त्रार्थके लिए ललकारा। दोनों की सम्मतिसे रामानुज सम्प्रदायके महापण्डित महामति **श्रीवेदान्त–देशिकाचार्यको** मध्यस्थ माना गया। यहाँ यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उस समय मध्व और रामानुज सम्प्रदायमें 'स्वयं भगवान्का अवतारत्व' और 'भजनका वैशिष्ट्य' आदि विषयोंको लेकर घोर विवाद चल रहा था। यह विवाद उस समय इतना बढ़ा हुआ था कि दोनों सम्प्रदायोंमें परस्पर पुत्र एवं कन्याका आदान–प्रदान तथा श्राद्धमें भोजन आदि सारे सामाजिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो गये थे। इन्हीं आचार्य प्रवर वेदान्तदेशिककी मध्यस्थतामें ही दोनों आचार्योंमें विचार–संघर्ष आरम्भ हुआ। विद्यारण्य न्याय–शास्त्रमें विशेष पारंगत न होने के कारण परास्त हुए। अक्षोभ्यमुनिके न्याय–शास्त्रकी प्रखर पाण्डित्य–प्रतिभाके सामने मायावाद–अरण्य छिन्न–भिन्न हो पड़ा। अक्षोभ्यमुनिके सम्बन्धमें दार्शनिक पण्डित–समाजमें निम्नलिखित श्लोक बहुत ही प्रसिद्ध है—

"असिना तत्त्वमसिना पर–जीव प्रभेदिना।
विद्यारण्यमरण्यानि ह्यक्षोभ्यमुनिरच्छिनत्।।"

इस पराजयके बाद ही विद्यारण्यका प्रताप कम हो गया। अक्षोभ्यमुनि और विद्यारण्यका आविर्भाव लगभग चौदहवीं शताब्दीमें हुआ था।

जयतीर्थ

उसके बाद वैष्णव सम्प्रदायमें जयतीर्थका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। ये अक्षोभ्यमुनिके शिष्य थे। उन्हींकी कृपासे जयतीर्थ महादिग्विजयी पण्डित हुए थे। श्रीमध्वके वेदान्तभाष्यपर **रचित** इनकी 'तत्त्व प्रकाशिका' टीका और **'न्याय–सुधा'** नामक ग्रन्थ विचार–जगत्में विशेष प्रसिद्ध हैं— "सुधा वा पठनीया, वसुधा वा पालनीया।" इन गुरु–शिष्य—दोनोंके प्रचण्ड प्रचार–प्रतापसे अद्वैतवाद पर्वतकी कन्दराओंमें जा छिपा।

मध्व सम्प्रदायके गौड़पूर्णानन्द नामक आचार्य ने 'तत्त्व–मुक्तावली' या 'मायावादशतदूषणी' नामक ग्रन्थमें मायावादमें एक सौ प्रकारके दोषोंको दिखलाया है। इसी सम्प्रदायके व्यासतीर्थने 'न्यायामृतम्', और 'भेदोजीवनम्' आदि ग्रन्थोंमें

तथा मध्वाचार्यके लगभग तीन सौ वर्ष बाद **वादिराजतीर्थ अर्थात् द्वितीय मध्वाचार्य**ने 'युक्ति-मल्लिका' 'पाषण्डमत खण्डनम्' और 'सुधाटिप्पनी' आदि ग्रन्थोंमें मायावादको छिन्न-भिन्न कर डाला है। इन लोगोंके प्रबल प्रचारसे अद्वैतवादके खण्डन और द्वैतवादके मण्डनसे अनेक सत्य-पिपासु व्यक्तियोंने तथा प्रतिष्ठाशाली मायावादी पण्डितोंने मायावादका परित्यागकर भागवत-सिद्धान्तके सामने अपना मस्तक झुकाया था। **किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है, किसी एक भी वैष्णवने अद्वैतमतके सामने अपना उन्नत मस्तक कभी नहीं झुकाया।**

प्रकाशानन्द सरस्वती

श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावसे आज तक प्रायः ४८१ वर्ष हो चले हैं। उनके आविर्भावके साथ-ही-साथ वैष्णव-जगत्का इतिहास आमूल परिवर्तित होकर दिव्य आलोकसे उद्भासित हो उठा था। चेतन अलोकके सौन्दर्यसे मुग्ध होकर बहुतसे अद्वैतवादी पतंगे आत्मसमर्पण करने लग गये।

प्रकाशानन्द सरस्वतीपादका समय १५ वीं शतीके अन्तिम चरण और १६ वीं शतीके प्रथम चरणके मध्य था। उस समय वे वाराणसी क्षेत्रमें मायावादके एकछत्र सम्राट थे। उनकी पाण्डित्य-प्रतिभाकी धाक चारों ओर फैली हुई थी। उन्होंने 'वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली' द्वारा अद्वैतवादियोंमें नयी जान डाल दी थी। चैतन्यदेवने बहुत दूर श्रीधाम मायापुरसे उनके नाम और सिद्धान्तोंके विषयमें सुनकर स्नेह भरे शब्दोंमें कहा था—

काशीते पढ़ाय बेटा प्रकाशानन्द।
सेह बेटा करे मोर अङ्ग खण्ड-खण्ड।।

(चै॰ च॰ म॰ ३/३७)

श्रीचैतन्यदेव साक्षात् अवतारी भगवान् हैं। प्रकाशानन्द अद्वैतमतके सिद्धान्तोंके अनुसार अपने शिष्यवर्गको—भगवान् निराकार हैं, निर्विशेष हैं, इत्यादि शिक्षाएँ देते थे, जिसका तात्पर्य भगवान्के शरीरको न मानना अथवा उनके अंगोंको खण्ड-खण्ड करना है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने इसी विचारको प्रकट किया था। दूसरे-दूसरे युगोंमें भगवान्ने अवतीर्ण होकर किन्हीं-किन्हीं अद्वैतवादियोंका विनाश किया है और किन्हीं-किन्हींको उद्धारकरके वैष्णव मतमें लाये हैं। किन्तु इस यगुमें करुणा-वरुणालय स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य

महाप्रभुने किसीका भी विनाश नहीं किया है। उन्होंने उनकी दुष्कृतियोंका विनाशकर, उनका हृदय परिवर्त्तनकर उन्हें या तो अपने विशुद्ध मतके अन्तर्भुक्त किया है अथवा अपनी सेवामें नियुक्त किया है। इसीलिए प्रकाशानन्द सरस्वतीपादको उद्धार करनेके लिए दल-बलके साथ वे वाराणसी उपस्थित हुए। दोनोंमें परस्पर शास्त्रार्थ हुआ। चैतन्य महाप्रभुजीने मायावाद-अद्वैतवादके अनगिणत दोषोंको स्पष्टरूपमें प्रकाशानन्द सरस्वतीके सामने पसार कर रख दिया। सरस्वतीपादके हजारों शिष्य निस्तब्ध होकर कठपुतली की तरह दोनोंके विचारोंको सुन रहे थे। सरस्वतीपाद श्रीमन्महाप्रभुजीकी अकाट्य युक्ति और विचारोंके सामने झुक पड़े और उनके विचारोंकी सत्त्वता उपलब्धिकर उनके निकट अपना मस्तक बेच दिया।

"सेह हइते संन्यासीर फिरे गेल मन।"

(चै॰ च॰ आ॰ ७/१४९)

"प्रकाशानन्द ताँर आसि धरिला चरण।।"

(चै॰ च॰ म॰ २५/६९)

श्रीचैतन्यदेवकी कृपा और प्रचारसे न केवल प्रकाशानन्द सरस्वतीपादका ही प्रत्युत् वाराणसीक्षेत्रके समस्त मायावादियोंका उद्धार हुआ था। यहाँ तक ही नहीं, शंकरक्षेत्र वाराणसी नगर उस समय निमाईक्षेत्र नदियानगरके रूपमें परिणत हो गया था। कविराज गोस्वामी लिखते हैं—

संन्यासी पण्डित करे भागवत विचार।
वाराणसीपुर प्रभु करिला निस्तार।।
निजलोक लइया प्रभु आइला वासाघर।
वाराणसी हइल द्वितीय नदीया नगर।।

(चै॰ च॰ म॰ २५/१५९-१६०)

अर्थात् चैतन्य महाप्रभुजीने समस्त वाराणसी का उद्धार कर दिया। वे संन्यासी, जो केवल वेदान्त आदि ग्रन्थोंका ही अध्ययन करते थे, महाप्रभुजीकी कृपासे अब श्रीमद्भागवतका भी रसास्वादन करने लगे। इस प्रकार वाराणसी नगर द्वितीय नदिया नगरके रूपमें परिणत हो गया।

इस प्रकार चैतन्यदेवने मायावादी संन्यासी प्रकाशानन्द सरस्वतीको वेदान्तके अचिन्त्य भेदाभेदवाद सिद्धान्तमें प्रतिष्ठितकर काशीमें मायावादरूप दुष्कृतिका विनाश किया था।

वासुदेव सार्वभौम

वाराणसीमें जिस प्रकार मायावादी संन्यासी समाजके अधिपति प्रकाशानन्द सरस्वती थे, उसी प्रकार श्रीक्षेत्रजगन्नाथपुरीके अद्वैतवादियोंपर वासुदेव सार्वभौमका एकाधिपत्य विराजमान था। वे छह दर्शनों तथा समस्त शास्त्रोंके अगाध विद्वान् थे, विशेषकर मायावादके सर्वप्रधान पण्डित थे। **इसलिए वे सार्वभौम (चक्रवर्त्ती राजा) के नामसे प्रख्यात थे।** श्रीचैतन्यदेव पुरीमें रहते समय उनके निकट वेदान्तका पाठ सुननेके लिए उपस्थित हुए। सार्वभौमजीने सात दिनों तक वेदान्तकी अद्वैत अर्थात् शंकराचार्यकृत व्याख्या सुनाकर चैतन्यदेवको उसे समझानेकी प्रचुर चेष्टा की। महाप्रभुजी भी सात दिनों तक बिलकुल मौन धारणकर प्रतिदिन उनकी वैसी व्याख्या सुनते रहे। महाप्रभुजीको सात दिनों तक बिलकुल मौन देखकर सार्वभौम महोदयने आठवें दिन पाठके सम्बन्धमें उनको मन्तव्य प्रकाश करनेको कहा। इस प्रसंगमें मैं पाठकवर्गको श्रीचैतन्यचरितामृतके छठे परिच्छेदकी आलोचना करनेके लिए अनुरोध करता हूँ। चैतन्य महाप्रभुजीने सार्वभौमके सिद्धान्तोंमें नाना प्रकारके दोष दिखलाकर उन्हें अपने मतमें आकर्षित कर लिया। सार्वभौमजीने मायावादकी असारताकी उपलब्धिकर उसका परित्याग कर दिया और महाप्रभुके शरणागत हुए—

आत्मनिन्दा करि लैल प्रभुर शरण।
कृपा करिवारे तबे प्रभुर हैल मन।।
देखि 'सार्वभौम दण्डवत करि' पड़ि।
पुनः उठि स्तुति करे दुई कर जुड़ि।।
प्रभुर कृपाय ताँर स्फुरिल सब तत्त्व।
नाम-प्रेमदान आदि वर्णेन महत्व।।

(चै॰ च॰ म॰ ६/२०१, २०४, २०५)

भाव यह है कि सार्वभौमजी अपने मतकी असारताकी उपलब्धिकर अपनेको बार-बार धिक्कारते हुए महाप्रभुके चरणोंमें शरणागत हुए। उनकी दीनता देखकर श्रीमन्महाप्रभुकी इनपर कृपा करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपनी षड्भुज-मूर्त्ति उनके सामने प्रकट की। उसे देखकर सार्वभौमने पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत किया और फिर उठकर दोनों हाथोंको जोड़कर वे उनकी नाना प्रकारसे स्तुति करने लगे। महाप्रभुकी कृपासे उनके हृदयमें समस्त तत्त्वोंकी स्फूर्ति हुई, जिससे वे महाप्रभुजीके नाम-प्रेमदानकी लीलाका महत्त्व वर्णन करने लगे।

इस तरह चैतन्यदेवके प्रबल प्रचारसे मायावाद सम्पूर्णरूपसे विलुप्त हो गया और पुरी स्थित शंकराचार्यका गोवर्द्धन मठ भूगर्भमें समाधि लें लिया।

इसी समय श्रीचैतन्यदेवके भक्तोंने भी उनका पदाङ्कानुसरणकर उनकी प्रीतिके लिए मायावादके विनाश कार्यमें उनका खूब साथ दिया। महाप्रभुके सम्प्रदायके अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदायके वैष्णव आचार्योंने भी श्रीचैतन्यदेवको साक्षात् भगवान् जानकर उनके पादाङ्कपूत वैष्णव-सिद्धान्तोंके सामने अपना मस्तक झुकाकर उनकी लीलामें सहायता प्रदान की थी। **इनमें सनक सम्प्रदायके आचार्य केशव काश्मीरी और विष्णुस्वामी सम्प्रदाय अर्थात् श्रीधरस्वामी सम्प्रदायके आचार्य श्रीवल्लभाचार्यके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं।** इन दोनों आचार्योंने श्रीचैतन्यदेवके निकट शिक्षा प्राप्त की थी। दिग्विजयी केशव काश्मीरीकी कहानी कौन नहीं जानता? वे दिग्विजयके लिए निकले थे, किन्तु श्रीचैतन्यदेवसे पराजित होकर उनसे श्रीभागवत-धर्मकी शिक्षा ग्रहण की। अन्तमें उन्होंने **'वेदान्त-कौस्तुभ'** आदि ग्रन्थोंकी रचनाकर निम्बार्क सम्प्रदायकी खूब पुष्टि की है। **वर्त्तमान समयमें निम्बार्क सम्प्रदायके अन्तर्गत जो ग्रन्थ दीख पड़ते हैं, उन्हें श्रीचैतन्यदेवके प्रचारका ही फल समझना चाहिए।**

उपेन्द्र सरस्वती

काशीके उपेन्द्र सरस्वती अद्वैतवादके एक प्रकाण्ड विद्वान् थे। श्रीवल्लभाचार्यने इनको शास्त्रार्थमें पराजित किया था, जिससे उक्त सरस्वतीजीका हृदय श्रीवल्लभाचार्यके प्रति हिंसा से परिपूर्ण हो गया। वे श्रीवल्लभाचार्य पर नाना-प्रकारसे अत्याचार करने लगे। वल्लभाचार्यने अपना जीवन संकटमय जानकर उस समय काशीका परित्याग कर दिया था। इसके अतिरिक्त वल्लभाचार्यजीने विजयनगरमें भी एक कट्टर मायावादी—अद्वैतवादीको शास्त्रार्थमें पराजितकर मायावादका झण्डा उखाड़ फेंका था। इस प्रकार वल्लभाचार्यने मायावादका विनाशकर श्रीचैतन्यदेवकी मनोऽभीष्ट सेवामें अपना हाथ बँटाया था।

श्रीचैतन्यदेव और व्यासराय

श्रीचैतन्य महाप्रभुके साथ मध्व सम्प्रदायके तत्कालीन प्रधान-प्रधान आचार्योंका मिलन हुआ था और आपसमें साध्य-साधन तत्त्वोंको लेकर आलोचना भी हुई थी। उस समय उडुपीके अध्यक्ष रघुवर्य आचार्य थे।

व्यासराय रघुवर्य आचार्यके पीछे उडुपी मठके अध्यक्ष हुए थे। वे अति दीर्घायु थे। वे न्याय शास्त्रके बड़े अगाध विद्वान् थे। यही कारण है कि आज भी पण्डित समाजमें उनकी पूजा होती है। किसी-किसीका मत है कि वे सन् १४८६ से १५३९ ई॰ तक जीवित थे तथा अपने जीवनके अन्तिम ५० वर्ष उडुपीके अध्यक्ष रहे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उनके समयके सम्बन्धमें मतभेद होने पर भी चैतन्यदेवके साथ उनकी भेंट हुई थी—इसे अनुमान करने में कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि चैतन्यदेव लगभग १५१५ ई॰ में उडुपी गये थे। उस समय आचार्य व्यासराय वहाँके मध्वमठके अध्यक्ष पदपर वर्तमान थे। श्रीचैतन्यदेव स्वयं भगवान् होनेपर भी आध्यक्षिक पण्डित समाज उनको न्याय शास्त्रका अधिदेवता मानता था। उनके न्यायशास्त्रकी पाण्डित्य-प्रतिभाकी चर्चा सुनकर रघुवर्यतीर्थ और व्यासराय आदि मनीषिवृन्द उनका दर्शन करनेके लिए उपस्थित हुए थे। व्यासराय भी न्यायशास्त्रके प्रकांड विद्वान् थे। महाप्रभुजीके साथ भेंट होनेपर उन्होंने उनसे न्याय-शास्त्रके सम्बन्धमें प्रचुर ज्ञान अर्जन किया था। व्यासराय द्वारा रचित **'न्यायमृत'** ग्रन्थ उसीका फल प्रतीत होता है। चैतन्यदेव और उनके अनुगतजनके प्रचण्ड-प्रचारसे मायावादका जो सार्वभौम विचार जलकर भस्म-स्तूपमें परिणत हो गया था, वही व्यासरायके 'न्यायमृत' के प्रबल प्रवाहमें बहकर अपना अस्तित्व भी खो देनेके लिए बैठा था। उस समय अद्वैतवादीकुल विपदग्रस्त होकर प्राणोंकी रक्षाके लिए 'विपदे मधुसूदन' की आर्त्तनाद करने लगा था।

मधुसूदन सरस्वती

मायावादका करुण आर्त्तनाद सुनकर पण्डितकुलचूड़ामणि 'मधुसूदन' ने मायावादकी भस्मके ऊपर 'अद्वैत-सिद्धि' रूप समाधि-मन्दिरका निर्माण किया। मधुसूदन सरस्वतीका जन्म पूर्वी-बङ्गाल (पूर्व-पाकिस्तान) के फरीदपुर जिलेके अन्तर्गत कोटालिपाड़ा परगनेके उनसिया नामक एक गाँवमें हुआ था। नवद्वीपमें न्यायशास्त्रका विधिवत् अध्ययन कर उन्होंने वाराणसीमें श्रीरामचन्द्रके निकट वेदान्तके मायावादी भाष्योंका अध्ययन किया। पीछे माध्व-सम्प्रदायके आचार्य **व्यासरायके 'न्यायामृत' के खण्डनमें इन्होंने 'अद्वैत-सिद्धि' नामक एक समृद्धिशाली तथा विराट् ग्रन्थकी रचना की। 'अद्वैत-सिद्धि' की रचनाके बाद मधुसूदन सरस्वती मन-ही-मन उसके खण्डन**

होनेकी सम्भावना जानकर उस ग्रन्थको किसी भी दूसरे सम्प्रदायके पण्डितोंको पढ़नेके लिये नहीं देते थे। बल्कि उसे खूब छिपाकर रखते थे। व्यासरायके शिष्य व्यासराम तीर्थने उनका अभिप्राय समझकर छद्मवेशमें उनसे 'अद्वैत-सिद्धि' के अध्ययनका बहाना कर सम्पूर्ण ग्रन्थको कण्ठस्थ कर लिया और **'न्यायामृत' ग्रन्थके ऊपर 'तरङ्गिणी' नामक एक टीकाकी रचनाकर 'अद्वैत-सिद्धि' रूप समाधि-मन्दिरको तोड़-फोड़कर मिट्टीमें मिला दिया।** उस समय अचिन्त्यभेदाभेदके आचार्य पण्डितकुल-मुकुटमणि श्रीजीव गोस्वामी भी प्रकट थे। कहते हैं, जीव गोस्वामी वाराणसीमें मधुसूदन सरस्वतीके पास वेदान्तका अध्ययन करनेके लिए गये थे। जैसा भी हो, मधुसूदन सरस्वतीके साथ जीव गोस्वामीकी भेंट हुई थी, इस विषयमें कोई विशेष मतभेद नहीं दिखलाई पड़ता। काशीमें रहते समय उनमें परस्पर भक्ति-तत्त्वके संबन्धमें आलोचना हुई थी। **उसीके परिणामस्वरूप मधुसूदन सरस्वतीके हृदयमें श्रीचैतन्यदेवके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई** और उन्हींकी कृपासे उन्होंने भागवत-भक्तिधर्मकी श्रेष्ठता उपलब्धिकर अपने जीवनकी शेष कीर्त्तिके रूपमें 'भक्ति-रसायन' नामक एक ग्रन्थकी रचना की। उक्त ग्रन्थके प्रथम श्लोकमें उन्होंने भक्तिको ही एकमात्र परम पुरुषार्थ बतलाया है—

नवरसमिलितं वा केवलं वा पुमर्थं,
परमिह मुचकुन्दे भक्तियोगं 'वदन्ति'।
निरुपमसुख - सम्विद्रूपमस्पृष्टदुःखं
तमहमखिलतुष्ट्यै शास्त्रदृष्ट्या व्यनज्मि।।

अर्थात्, शास्त्रोंकी आलोचनाकर जीवोंके चरम कल्याणरूप परम तुष्टिके लिए दुखसम्बन्ध-शून्य अतुलनीय सुख और संवित् शक्तिस्वरूप मुकुन्दके भक्तियोगका मैं वर्णन कर रहा हूँ। जिस भक्तियोगको श्रीजीव गोस्वामी जैसे गुरुवर्गने नवरसमिलित और एकमात्र (केवलम्) परम पुरुषार्थ बतलाकर जगत्में प्रचार किया है।

उक्त श्लोकमें 'वदन्ति'—इस बहुवचनान्त शब्द द्वारा उन्होंने **श्रीजीव गोस्वामीको गुरुस्वरूप मानकर उनके प्रति सम्मान सूचित किया है।** तथा यह देखा जाता है कि मधुसूदन सरस्वती यहाँ 'केवल-ज्ञान' को परमपुरुषार्थ नहीं मानते हैं, बल्कि उस विचारको परित्यागकर **'केवला-भक्ति'** को ही परमपुरुषार्थ बतलाए है।

जयपुरमें मायावाद

श्रीचैतन्यदेवके समय अद्वैतवादके निर्वाण लाभ करनेके बाद मधुसूदन सरस्वती द्वारा निर्मित उसका समाधि-मंदिर भी श्रीजीव गोस्वामी और व्यासराम द्वारा ध्वंसप्राप्त होकर जीर्ण-शीर्ण खण्डहरोंके रूपमें पड़ा था। उन्हीं खण्डहरोंसे प्रेतात्माओं जैसी कतिपय प्रच्छन्न अद्वैतवादी जमायतों और श्रीराधाकृष्णकी सेवा-विरोधी सम्प्रदायोंने जयपुरके राजमहलोंमें भारी उपद्रव मचाना आरम्भ किया। इन उपद्रवोंको शान्त करनेके लिए वृन्दावनसे श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके प्रतिनिधिस्वरूप **गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषणजी**को निमन्त्रण देकर जयपुर बुलाया गया। उस समय जयसिंह वहाँके नरेश थे। 'गोविन्द'-नामके अतिरिक्त प्रेतात्माओं तथा राधा-विरहित ऐश्वर्यपर तत्त्वके सेवकोंके मंगलका और कोई दूसरा उपाय न देखकर श्रीबलदेवने **'गोविन्दभाष्य' की रचनाकर मायावाद और ऐश्वर्य-सेवावादकी कुदृष्टिसे राजपुरीकी रक्षा की थी।** इस तरह उसी समयसे वहाँके राजप्रासादमें माधुर्यमय भक्तिधर्मका लुप्तप्राय गौरव पुनः प्रतिष्ठित हुआ।

मायावादकी प्रेतात्मा

श्रीचैतन्यदेव और उनके भक्तोंके आविर्भावके बाद १७ वीं शताब्दीसे लेकर १९ वीं शताब्दी तक मोटे तौर पर यथार्थ मायावादी नहीं देखे जाते हैं। बीच-बीचमें जिन्हें मायावादी समझा जाता है, वे असलमें अशरीरी, वायुभूत, निराश्रयस्वरूप मायावादकी प्रेतात्मा अथवा उसके तर्पणकारी ही प्रतीत होते हैं। उन प्रेतात्माओंके उद्धारके लिए वैष्णव ओझा लोग समय-समय पर आविर्भूत हुए थे। उनमेंसे कुछ लोगोंका नामोल्लेख किया जा रहा है। रामानुज सम्प्रदायके रामशास्त्रीने शृंगेरीमठके स्वामी सच्चिदानन्दको शास्त्रार्थमें पराजित किया था। प्रतिवादी-भयंकर **अनन्ताचार्य** रामानुज सम्प्रदायके एक प्रतिभाशाली पण्डित हुए थे। इन्होंने अपने दिग्विजयके समय काशीमें राजेश्वरी शास्त्री और वीरेश्वर शास्त्री नामक अद्वैतवादियोंको शास्त्रार्थमें हराया था। माध्वसम्प्रदायके **सत्यध्यान तीर्थ**ने भी काशीमें ही अद्वैतमतका खण्डन कर **'अद्वैतमत-विमर्ष'** और **'त्रिपुण्ड्र-धिक्कार'** नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की है।

पञ्च भङ्गी

व्यासरायके 'न्यायामृत' ग्रन्थके खण्डनमें मधुसूदन सरस्वतीने 'अद्वैतसिद्धि' की रचना की। फिर अद्वैतसिद्धिके खण्डनके लिये माध्वसम्प्रदायके व्यासरामतीर्थने 'तरंगिणी' की रचना की। 'तरंगिणी' के विरुद्धमें मायावादी सम्प्रदायके ब्रह्मानन्दने 'ब्रह्मानन्दीय' की रचना की और 'ब्रह्मानन्दीय' का खण्डन माध्वसम्प्रदायके 'वनमालामिश्रिय' ग्रन्थपञ्चक में किया गया है, जो 'पञ्चभङ्गी' के नामसे प्रसिद्ध है। सुना जाता है, मैसूरके राजकीय ग्रन्थागारमें आज भी यह ग्रन्थ संरक्षित है। पञ्चभङ्गीमें मायावादके समस्त सिद्धान्तोंका बड़े ही सुन्दर ढंगसे खण्डन किया गया है।

वैष्णव आचार्योंके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे मनीषियों द्वारा मायावादका खण्डन

मायावादके असत् सिद्धान्तोंका खण्डन केवल वैष्णव आचार्योंने ही नहीं किया है, प्रत्युत् **न्याय**, **मीमांसा**, **शैव**, **सांख्य** आदि मतोंके अनेक आचार्यों ने भी उसके प्रति कटाक्ष किया है, उनमें अनेक दोष दिखलाये हैं तथा उनका खण्डन भी किया है। उनमें गंगेश उपाध्याय, राखालदास न्यायरत्न, नारायण भट्ट (जिन्होंने अद्वैतवादी नृसिंह आश्रमके शिष्य नारायण आश्रमको शास्त्रार्थमें हराया था), भास्कराचार्य, विज्ञानभिक्षु आदि महात्माओंके नाम उल्लेखयोग्य हैं।

आधुनिक अवस्था

आधुनिक युगमें मायावाद भिन्न-भिन्न रूपसे जगत्में फैला हुआ है और फैल रहा है। यान्त्रिक युगमें यान्त्रिक-सभ्यताके विस्तारके साथ-साथ पृथ्वीके समस्त देशोंमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित होनेके कारण भारतीय मायावाद विभिन्न देशोंमें विचित्र-विचित्र आकारोंमें आदर पा रहा है। पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा परस्पर विरोधी मतोंके प्रचार किये जानेपर भी, तथा किसी-किसीके विचारसे इनमें मायावादके आपातविरुद्ध अनेक युक्तियाँ रहनेपर भी वे सभी किसी-न-किसी प्रकार मायावादकी ही पृष्ठपोषकता करते हैं। तत्त्वविदोंका कहना है—"मायावाद अथवा केवलाद्वैतवाद भारतसे ही पृथ्वीके समग्र देशोंमें फैला है। सिकन्दरके साथ कुछ पण्डितोंने भारतमें आकर केवलाद्वैत मतकी शिक्षा प्राप्त की थी, जिन्होंने अपने देशमें लौटने पर वहाँ इसका प्रचार किया था।" किसी-किसी पाश्चात्य विद्वानोंने भी अपनी पुस्तकोंमें इसका उल्लेख किया है।

पञ्चोपासना और समन्वयवाद—आधुनिक मायावादके दो बच्चे हैं। समन्वयवादके जन्मदाता मुगल सम्राट् अकबर थे। **अकबर राजनीतिके एक कुशल खिलाड़ी थे। उन्होंने कुछ राजनैतिक सुविधाओंके लिए समन्वयवादका प्रचार किया था। उनके उस समन्वयवादको 'दीने इलाही–धर्म' कहते हैं।** आधुनिक युगके सामाजिक और राजनैतिक नेताओंने कुछ सुविधा पानेकी आशामें समन्वयवाद अर्थात् प्रच्छन्न बौद्धवाद (मायावाद) का आदर करना आरम्भ किया है। वैष्णवधर्मके नाम पर भी आजकल मायावाद खूब तेजीसे समाजमें प्रवेश कर रहा है। कहाँ तक गिनाया जाय, बंगालमें आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ा, दरवेश, साँई, सहजिया, सखीभेकी, स्मार्त्त, जाति गोसाँई, अतिवाड़ी, चूड़ाधारी, गौराङ्गनागरी आदि मतोंके अनुयायी प्रच्छन्न मायावादी हैं। उड़ीसा के अतिवाड़ी जगन्नाथ और आसामके शंकरदेव, दोनों ही न्यूनाधिकरूपमें श्रीमूर्त्ति–विरोधी और प्रच्छन्न मायावादी हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके परवर्ती कालके रामानन्द, कबीर, नानक और दादू आदि समन्वयपन्थीगण कमोवेश प्रच्छन्न मायावादी हैं। आधुनिक जगत्में मायावाद कितने प्रकारके विचित्र रूपोंको धारणकर चल रहा है, इसे १९ वीं शताब्दीमें **श्रीभक्तिविनोद ठाकुर** और गौड़ीय मठके आचार्य **ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर**ने निर्भीक होकर सिंह–स्वरसे विश्लेषण और प्रचारकर सत्य–पिपासुओंकी आँखें खोल दी हैं। इन्होंने केवल गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके ग्रन्थोंका प्रकाशन और प्रचारकर मायावाद आदि कुमतों–कुसिद्धान्तोंका खण्डन ही नहीं किया है, अपितु समस्त वैष्णव सम्प्रदायके वेदान्त–ग्रन्थादिके प्रकाशन, प्रचार और आलोचनाका प्रचुर सुयोग प्रदानकर श्रीचैतन्य–सिद्धान्त–वाणी और भागवतार्कमरीचिमालाके प्रखर तेजसे अनेक मतवादरूपी अन्धकारका नाश कर दिया है। इतना ही नहीं सुदूर पाश्चात्य देशोंमें भी अर्थात् लण्दन और अमेरिका आदि स्थानोंमें भी, जहाँ कि भोग–वासना और कामनाका उच्छृंखल नृत्य अबाध गतिसे हो रहा है, अपने लोगोंको भेजकर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी सार्थक की है—

"पृथिवीते आछे जत नगर आदि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइवे मोर नाम।।"

उस वाणीकी सार्थकता श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके जीवनमें ही परिस्फुट हुई है।

उपसंहार

[क] ऐतिह्य

उपसंहारमें अधिक बातें लिखकर मैं पाठकोंको परेशान करना नहीं चाहता। मैंने प्रत्येक खण्ड विषयोंके अन्तमें थोड़े-बहुत शब्दोंमें अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। मेरे इस क्षुद्र निबन्धकी आद्योपान्त आलोचनाकर पाठकवर्ग इस बातको भलीभाँति जान पाएँगे कि **आजतक किसी भी वैष्णव धर्मावलम्बी महापुरुषने किसी भी मायावादीके समक्ष वाद-विवादमें परास्त होकर, शुद्ध भक्तिकी सर्वश्रेष्ठता अस्वीकारकर मायावादके नीरस ज्ञान-पथको ग्रहण नहीं किया है। किन्तु मायावादियोंमें सर्वश्रेष्ठ अनेक प्रतिभाशाली विद्वान् व्यक्तियोंने शुद्धवैष्णवोंके साथ शास्त्रार्थमें परास्त होकर विष्णुका केवल परतमत्व ही स्वीकार नहीं किया है, अपितु ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकी उत्कर्षता अङ्गीकारकर तथा अपना मत परित्यागकर वे भक्ति-धर्ममें दीक्षित भी हुए हैं।**

यदि आपलोग 'शंकरका दिग्विजय' प्रसङ्ग आलोचना करें तो स्पष्टरूपसे देख पाएँगे कि आचार्य शंकरने जिन लोगोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था, उनमें मण्डन मिश्र ही सर्वप्रधान थे। वे जैमिनीमतके अनुयायी कर्मवादी और स्मार्त्त थे। आचार्य शंकर द्वारा पराजित दूसरे-दूसरे व्यक्तियोंके सम्बन्धमें, 'शंकर-विजय' प्रसङ्गमें मैंने थोड़ी बहुत आलोचना की है। आचार्य शङ्करके अनन्तर आज तक मायावादके इतिहासमें केवल नृसिंह आश्रम नामक मायावादी आचार्यने अप्पय दीक्षित नामक **एक शैव पण्डितको शास्त्रार्थमें पराजित कर उनको ज्ञानवादमें दीक्षित किया है।** आचार्य अप्पय दीक्षितके ग्रन्थोंसे पता चलता है कि उनके हृदयमें पहलेसे ही पञ्चोपासनाके प्रति आदर था। आचार्य शङ्करने अज्ञ जीवोंके लिये पञ्चोपासनाके ऊपर विशेष जोर दिया था। भास्कराचार्यकी विचारधाराके अनुसार अप्पय दीक्षित एक सच्चे शैव प्रतीत नहीं होते। जैसा भी हो, ये वैष्णव नहीं थे—इस विषयमें कोई भी मतद्वैध नहीं है। ऐसी अवस्थामें अवैष्णव अप्पय दीक्षितके द्वारा किसी भी वैष्णवेतर मत अर्थात् ज्ञानवादको स्वीकार करनेसे न तो वैष्णवमतकी कुछ मर्यादा ही घटती है और न उससे ज्ञानवादकी प्रधानता ही सूचित होती है।

सत्ययुगके चारों कुमारोंसे लेकर आचार्य शंकरके आविर्भाव काल तक मायावादके ५००० वर्षोंके इतिहासमें मायावादियोंके जन्म ग्रहणका ढंग

लक्ष्य करनेका एक प्रधान विषय है। *"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"*—मंत्र द्वारा हमारी उत्पत्तिका स्थान (ब्रह्म) निरूपित किया गया है। किन्तु प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंकी उत्पत्ति एक निराले और अस्वाभाविक ढंगसे हुई है। जिससे ऐसा बोध होता है कि उन्होंने इसी कारण शक्ति और शक्तिमानका विचार परित्याग कर दिया है और माता-पिताके भावको मूलतः उखाड़ फेंककर निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वकी संस्थापना की है।

यद्यपि यहाँ यह निरूपण किये जानेकी आवश्यकता है कि वैष्णव आचार्योंकी युक्तियोंने मायावादकी युक्तियोंका किस तरह निराकरण किया है, किन्तु इस क्षुद्र निबन्धमें स्थानाभावके कारण यह संभव नहीं हो सका है। इस विषयमें मैं श्रीजीव गोस्वामीके षट्-सन्दर्भ और सर्व-संवादिनी; श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके गोविन्द भाष्य, सिद्धान्तरत्नम्, प्रमेयरत्नावली, विष्णुसहस्रनाम-भाष्य तथा उपनिषद्-भाष्य और गौड़ीय वैष्णवाचार्य यतिसम्राट परमहंस स्वामी **श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद**के चैतन्यचरितामृतका अनुभाष्य और श्रीमद्भागवतका गौड़ीय-भाष्य आलोचना करनेके लिये अनुरोध करूँगा।

[ख] निर्वाणरूप फलनिरोध

हमने पहले ही यह दर्शाया है कि मायावादके आद्योपान्त इतिहास और तत्त्वसमूहकी समालोचना सर्वथा ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधार पर ही की गई है। **मायावादकी भित्ति अत्यन्त दुर्बल युक्तियोंके आधार पर टिकी है और यही कारण है कि सत्ययुगसे लेकर आजतक वह अपने प्रतिपक्षियोंके समक्ष वाग्युद्धमें अपनी पराजय स्वीकार करता आया है।** फिर भी प्राचीनकालमें भी इस मतवादका अस्तित्व लक्ष्यकर कोई इसका पदाङ्क-अनुसरण कर निर्वाण प्राप्त करना चाहे तो हमारा वक्तव्य है कि **मायावादकी निर्वाण मुक्ति सम्पूर्ण मिथ्या और कल्पनामूलक शब्दमात्र है**—इसे केवल ऐतिह्य प्रमाणोंके आधार पर ही निःसन्देह रूपमें प्रमाणित किया जा सकता है। **वास्तवमें निर्वाण नामक ऐसी कोई अवस्था ही नहीं है, जिसे जीव कभी भी प्राप्त कर सके। अद्वैतवादियोंमें से आजतक कोई भी उस अवस्थाको प्राप्त हुआ हो—इसका एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है।** गौड़पाद, गोविन्दपाद, आचार्य शंकर और माधव जैसे प्रकाण्ड मायावादियोंकी जीवनीकी आलोचना करनेसे हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि इनमेंसे कोई भी उनके द्वारा समर्थित

निर्वाण मुक्तिको नहीं प्राप्त कर सके थे। आचार्य शंकरके जीवनचरित्रके अनुसार एक दिन आचार्य शंकर ध्यानमें मग्न थे। उसी समय उनके दादागुरु श्रीगौड़पाद उनके निकट आकर बोले—"शंकर! मैंने तुम्हारे गुरुदेव आचार्य गोविन्दपादके निकट तुम्हारी खूब प्रशंसा सुनी है। मैंने यह भी सुना है कि तुमने मेरी माण्डुक्य कारिकाके ऊपर एक सुन्दर भाष्यकी रचना की है। मैं उसे देखना चाहता हूँ।" आचार्य शंकरने तत्क्षण उक्त कारिकापर अपना लिखा हुआ भाष्य उनको दिखलाया। गौड़पाद उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसका अनुमोदनकर चले गये।

उपर्युक्त घटनासे यह पता चलता है कि गौड़पाद और गोविन्दपादकी विदेहमुक्तिके बाद निर्वाण मुक्ति नहीं हुई थी। यदि उनकी निर्वाण मुक्ति हुई होती तो गौड़पाद निर्वाण मुक्ति प्राप्त होनेपर भी निर्वाण प्राप्त गोविन्दपादके मुखसे शंकर-सम्बन्धी बातोंको कैसे सुन सकते थे? दूसरी बात, आचार्य शंकर भी माण्डुक्य कारिकापर अपना लिखा हुआ भाष्य निर्वाण प्राप्त हुए गौड़पादको कैसे दिखला सके थे? ये दोनों बातें सर्वतोभावेन असम्भव हैं। **यदि हम उक्त घटनाको सत्य मानते हैं, तो मायावादियोंकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्ति मिथ्या जान पड़ती है**, दूसरी तरफ यदि हम उनकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्तिको सत्य मानते हैं, तब उक्त घटना मिथ्या या काल्पनिक प्रतीत होती है। मायावादियोंने निर्वाण मुक्तिका जो लक्षण बतलाया है, उसपर विचार करनेसे उक्त घटनाका कुछ अंश सत्य मान लेने पर भी उक्त दोनों मायावादी आचार्योंकी निर्वाण मुक्ति अलीक ही प्रतीत होती है। उनलोगोंकी बातें छोड़िये, शंकरकी जीवनीके अनुसार स्वयं शंकर भी पुनः माधवाचार्य अर्थात् विद्यारण्यके रूपमें आविर्भूत हुए थे। क्या निर्वाण मुक्तिकी यही परिणति है? मायावादियोंका कथन है कि निर्वाण मुक्तिके अनन्तर ब्रह्मके अतिरिक्त जीवकी कोई पृथक् सत्ता नहीं रहती और वह ब्रह्म भी निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय व निर्विशेष आदि होता है। ऐसी अवस्थामें जब गौड़पाद, गोविन्दपाद और शङ्कराचार्यकी पृथक्-पृथक् रूपमें सत्ता देखी जाती है, तो किस युक्तिके आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि इनलोगोंकी निर्वाण मुक्ति हुई थी? **मायावादी आचार्योंका निर्वाण मुक्तिके सम्बन्धमें आजतक कोई भी ऐसा सिद्धान्त नहीं उपलब्ध होता, जिससे निर्वाणके पश्चात् भी परस्पर वार्त्तालाप और पुनराविर्भाव सम्भव माना जा सके। इससे स्पष्ट है कि निर्वाण मुक्ति एक मिथ्या और छलनामूलक शब्दमात्र**

है अथवा लोक-संग्रह करनेका फंदामात्र है, क्योंकि निर्वाण मुक्तिके प्रधान-प्रधान प्रचारक—यहाँ तक कि जिनको इस मतका प्रवर्त्तक कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी, इस प्रकारकी कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके हैं। फिर दूसरोंकी बातका क्या कहना?

महान् आश्चर्यकी एक और बात यह है कि शङ्कराचार्यने स्वप्नतत्त्वको मिथ्या बतलाकर जगत्‌को सर्वथा मिथ्या प्रतिपादित किया है। किन्तु शंकरके अनुयायियोंने—जिन्होंने आचार्य शंकरका जीवनचरित लिखा है—**स्वप्नतत्त्वको सत्य माना है**। प्रमाणस्वरूप हम कहना चाहते हैं कि जब शंकरकी माता कलंकिनी होनेपर लोक-लज्जाके डरसे आत्महत्या करने जा रही थी, उनके पिता **मघमण्डनको स्वप्नमें आज्ञा मिली कि विशिष्टाके गर्भमें शङ्कर अवस्थान कर रहे हैं**; इसलिये वे विशिष्टाकी रक्षा करें, जिससे वे आत्महत्या न कर सकें।**कुछ ही दिनोंमें स्वप्न सत्य हुआ, विशिष्टाके गर्भसे शङ्करका आविर्भाव हुआ।** अब पाठक स्वयं विचार करें कि इस घटनासे क्या स्वप्न मिथ्या प्रमाणित होता है? क्या विशिष्टाके गर्भसे शंकर नामक किसीका जन्म नहीं हुआ? क्या वे सभी बातें 'स्वप्नोपम' या 'मायोपम' मिथ्या ही हैं? इस सत्य ऐतिहासिक घटनाओंके विद्यमान रहते हुए भी क्या मायावादके 'स्वप्न' के दृष्टान्तके अनुसार जगत्‌को मिथ्या कहा जा सकता है?

(ग) ब्रह्मसूत्र 'मायामात्रन्तु' (३/२/३) की आलोचना

यहाँ मैं पाठकोंका ध्यान ग्रन्थके आरम्भमें लिखित 'जीवनी आलोचनाकी धारा' की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस ग्रन्थका वास्तविक नाम 'वैष्णव-विजय' होने पर भी 'मायावादकी जीवनी' का इतिहास विस्तृत रूपसे वर्णन हुआ है और इस प्रकार वेदान्त दर्शनके सूत्र **"मायामत्रन्तु कात्स्न्येनान्यभिवक्त स्वरूपत्वात्"** (ब्र.सू.३/२/३) का आदर्श स्वरूप वर्णित हुआ है। क्योंकि, शंकराचार्यका मतवाद 'ब्रह्मवाद' नहीं है, बल्कि मायावाद है—यही प्रदर्शित करना मेरे इस प्रबन्धका शास्त्रानुमोदित उद्देश्य है। अतः पाठकवर्ग गम्भीरतापूर्वक इस प्रबन्धका आद्योपान्त पाठ करनेसे यह समझ पाएँगे कि वास्तव शास्त्रीय 'ब्रह्म' 'शून्य' नहीं है एवं मायाके अधीश्वर अर्थात् समस्त चित्-अचित् शक्तियोंके ईश्वरस्वरूप सर्वशक्तिमान् स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। क्योंकि भगवानके स्वरूपका निर्देश करते हुये परतत्त्वके सम्बन्धमें विभिन्न शास्त्रकारोंने जो वर्णन किया है, विशेषतः श्रीमद्भागवतमें जो देखा जाता है। वह यह है—

"वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।"

(श्रीमद्भा. १/२/११)

[अर्थात् तत्त्वविद् लोग तत्त्ववस्तुको अद्वय ज्ञान कहते हैं, जिसकी प्रथम प्रतीति ब्रह्म, द्वितीय प्रतीति परमात्मा एवं तृतीय प्रतीति भगवान् हैं।]

इनमें से उक्त त्रिविध तत्वोंके सशक्तिक सविशेष तत्त्वसमूहके दशावतार आदिका वर्णनकर ब्रह्मतत्त्वके आविर्भाव समूहमें राम, नृसिंह, वराह आदि सर्वशक्तिमान्समूहका वर्णन किया गया है। उसके बाद ही देखा जाता है—

एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा.१/३/२८)

इसके अतिरिक्त शास्त्रों में अनेक स्थानोंमें उक्त त्रिविध परतत्त्वमें ब्रह्मके अतिरिक्त परब्रह्म या परमब्रह्म उल्लिखित हुआ है। इतना ही नहीं आचार्य शंकर कथित 'आत्मा' शब्दके बदले भी 'परमात्मा' शब्दका उल्लेख अनके स्थानोंमें है। **अतः ब्रह्म या आत्मा 'परम' नहीं है। परमब्रह्म या परमात्मा ही 'परम' रूपमें प्रमाणित है, ब्रह्म नहीं।** आश्चर्यका विषय यह है कि 'भगवत्' शब्दके पूर्व 'परम' शब्द का व्यवहार होकर 'परमभगवान्' शब्द कहीं नहीं पाया जाता है। इसके द्वारा ही प्रमाणित होता है कि **भगवत्–तत्त्व ही परतत्त्व है, ब्रह्म परतत्त्व नहीं है।** वेदान्त दर्शनके जिज्ञासाधिकरणमें ब्रह्मकी जिज्ञासा करते हुए इसके उत्तरमें वेदव्यासने 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' सूत्र की अवतारणा की है एवं स्वयं भगवान् 'श्रीकृष्ण' को ब्रह्म बताया है, शंकराचार्य द्वारा कथित निर्विशेष ब्रह्मको नहीं।

आचार्य शंकर कहते हैं—"ब्रह्म निःशक्तिक है, अतः सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदिकी शक्ति उसमें कहाँ है?" वे और भी कहते हैं—"जब ब्रह्म मायाग्रस्त होकर जीवके पर्यायमें आते हैं, तभी वे सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदिके कर्त्ता होते हैं। मायाग्रस्त ब्रह्म ही समस्त कार्य करते हैं। उस अवस्थामें वे और ब्रह्म नहीं कहलाते, बल्कि जीवके पर्यायमें परिगणित होते हैं।" यही मायावादका प्रधान सूत्र है। इसीलिए शंकर मायावादी हैं। वे वास्तविक ब्रह्मवादी नहीं हैं। इस विचारको प्रदर्शित करनेके लिए ही ब्रह्मसूत्रके 'मायामात्रन्तु' इत्यादि सूत्र उद्धृत हुए हैं एवं शंकरने इस सूत्रमें अपने समस्त मतवाद अर्थात् मायावाद भाष्यको प्रदर्शित किया है।

[घ] स्वप्नका अर्थ मिथ्या नहीं है

उन्होंने और भी कहा है—"सृष्टि प्रकरण मिथ्या है।" उनके अनुसार भगवान् मिथ्या हैं। इसी मिथ्यात्वके अनुकूलमें 'माया' शब्दका वास्तव अर्थ आच्छादितकर उन्होंने अपने मायावादमूलक 'माया' शब्दका भी मिथ्या अर्थ ही किया है। सृष्टिको भी मिथ्या ही बताया है। इसे प्रमाणित करते हुए उन्होंने 'माया' और 'स्वप्न' को एक ही तत्त्व बताया है। उनके मतानुसार जिस प्रकार स्वप्न मिथ्या है, वैसे ही उन्होंने प्रकृत वस्तुके 'अनभिव्यक्त-स्वरूपता' का निर्णय करते हुए उसे मिथ्या ही प्रमाणित करने की चेष्टा की है। मायाग्रस्त जीवके जो स्वप्न आदि कार्यकलाप हैं, वे सम्पूर्णतः मिथ्या हैं। जीव स्वप्नावस्थामें देश, काल, रथ, पथ आदि जो कुछ दर्शन करता है, स्वप्नमें उसके पूर्णस्वरूपकी अभिव्यक्ति अर्थात् वास्तव स्वरूपगत अवस्थिति नहीं होनेके कारण वह मिथ्या है अर्थात् मायामात्र है। किन्तु यहाँ वक्तव्य यह है कि बद्धजीवके वास्तविक सत्तामें भगवान्की अवस्थिति नित्य सत्यके रूपमें वर्त्तमान है। भगवान्की सत्तामें जगत्की सृष्टिका कर्त्तृत्व वर्त्तमान रहनेके कारण जीवके हृदयमें स्वप्न-सृष्टिकी अलौकिक क्षमता स्वभावतः वर्त्तमान है। इसीलिए अनेक स्वप्न सत्य भी हो जाते हैं। 'सत्यसङ्कल्पता' गुण ही इसका प्रधान कारण है। उदाहरणस्वरूप शंकराचार्यकी माता विशिष्टाके 'गर्भमें शंकर उपस्थित हैं'—यह विशिष्टाके पिता मघमण्डनने स्वप्नमें देखा था एवं यह स्वप्न ध्रुवसत्यमें परिणत हुआ था। इससे शंकराचार्य द्वारा कथित 'मिथ्या स्वप्नरूप' बिल्कुल ही प्रमाणित नहीं होता है। अतः स्वप्नमात्र ही मिथ्या है, यह कहना युक्तियुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त जो आत्यन्तिक (सम्पूर्ण) मिथ्या है, वह कभी स्वप्नमें उदित नहीं होता है। जिसकी सत्ता है, वही जीवके हृदयमें आविर्भूत होकर स्वप्नमें परिणत होता है—यह बिल्कुल आत्यन्तिक मिथ्या नहीं है। वस्तुतः ईश्वरकी मायाशक्तिके प्रभावसे सृष्टि आदि व्यापार कभी भी शंकर द्वारा कथित स्वप्नकी भाँति मिथ्या नहीं हैं। अपितु सत्यके रूपमें ही स्वीकृत हैं।

[ङ] दो प्रकारकी माया तथा छाया एवं प्रतिबिम्ब

मायाशक्ति-प्रसूत मायिक जगत्के अस्थायी और परिवर्त्तनशील होनेपर भी यह जड़-जगत् मायातीत वैकुण्ठ-जगत्की छायाके समान प्रतिकृति

है। **'माया' कहनेसे योगमाया और महामाया—दोनोंको ही लक्ष्य किया जाता है। शास्त्रमें अनेक स्थलोंमें 'माया' शब्दका उल्लेख है। ये कहीं 'योगमाया' के अर्थमें और कहीं 'महामाया' के अर्थमें व्यवहृत हुए हैं।** 'माया' शब्द द्वारा सर्वदा इस 'महामाया' को ही लक्ष्य किया जाएगा, यह वेदव्यास या वेद-उपनिषद्का उद्देश्य नहीं है। 'योगमाया' की छाया ही 'महामाया' हैं। अतः कायाकी प्रतिकृति छायामें प्रतिफलित होती है। यह प्रतिविम्बस्वरूप नहीं है। छाया कायाके साथ ही युक्त अवस्थामें रहती है अर्थात् कायासे अलग नहीं रहती है। केवल वैशिष्ट्य यह है कि महामायाके स्वरूप छायामें काया अर्थात् योगमायाके स्वरूपकी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती है। यही वेदान्तके 'मायामात्रन्तु' सूत्रमें लिपिबद्ध हुआ है। 'कात्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्' वाक्यमें 'कात्स्न्येन' शब्दके द्वारा 'पूर्णरूपमें' एवं 'अभि' उपसर्ग द्वारा भी 'सर्वतोमावेन'—समझा रहे हैं। विषयको स्पष्ट करनके लिए उदाहरणस्वरूप कहना चाहूँगा कि एक मनुष्यकी छाया बननेपर उस मनुष्यके अवयवोंकी पूर्ण अभिव्यक्ति छायामें नहीं दृष्ट होती है। जैसे आँखका श्वेत भाग एवं विविध सौन्दर्य एवं वृद्धके समान श्वेत बालों या उसके अंगोंकी विशेषता इत्यादि कुछ भी छायामें व्यक्त नहीं होती है। तथापि निकट ही यदि गाय-भैंस आदिकी छाया बने तो वह छाया मनुष्यकी आकृतिसे सम्पूर्णरूपसे पृथक् होगी। तृतीय व्यक्ति छाया देखते ही यह समझ सकता है कि पहलेवाली छाया मनुष्यकी छाया है एवं बादमें उल्लिखित छाया गाय-भैंस की है। छाया द्वारा मोटेतौरपर यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है कि यह किसकी छाया है, किन्तु समष्टिगतरूपसे अर्थात् सम्पूर्णरूपसे उस वस्तुकी विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती है। जैसे छाया द्वारा यह नहीं कहा जा सकता है कि यह किसी गोरे व्यक्तिकी छाया है अथवा काले व्यक्तिकी छाया है। योगमाया और महामायाका यही वैशिष्ट्य एवं पार्थक्य है। अतएव महामायाके जगत् और योगमायाके जगत्में समानता परिलक्षित होनेपर भी, वे एक नहीं हैं। वर्त्तमान विश्वके ध्वंसत्व, परिवर्त्तनशीलता, अनुपादेयता, हेयता आदिको देखकर वैकुण्ठ जगत्को भी ऐसा ही समझना नितान्त भ्रान्तिमूलक और मायावाद-पसूत विचार है।

यहाँ मैंने मनुष्य और पशुके उदाहरण द्वारा विषयको समझानेकी चेष्टा की। किन्तु, समवयस्क दो मनुष्योंकी छाया यदि एक ही स्थानमें दिखाई

दे, तो दोनों छायाको देखकर दोनों मनुष्योंका परिचय (पार्थक्य) पाना अत्यन्त सुकठिन है, तथापि दोनों मनुष्य एक नहीं हैं, यह सर्वदा स्मरण रखना होगा। प्रसंगवश यह भी निवेदन कर रहा हूँ कि **छाया और प्रतिबिम्ब एक नहीं हैं**। आचार्य शंकरने उन दोनोंको एक मान लिया और इस प्रकार जगत्की मिथ्यताको स्थापित करनेकी चेष्टा की है। जैसे—नदी में चन्द्रकी छाया पतित नहीं होती, अपितु प्रतिबिम्ब दृष्ट होता है। तात्पर्य यह है कि नदीका जल जब कम्पित (तरंगायित) होता है, तब तरंगके उठनेसे उसमें चन्द्रकी प्रतिच्छविको भी कम्पित होता हुआ देखा जाता है। उससे यह नहीं समझना चाहिए कि चन्द्र भी अपनी प्रतिच्छबिके साथ-साथ कम्पित हो रहा है। यही 'छाया' और 'प्रतिबिम्ब' का पार्थक्य है। पूर्वके दृष्टान्तके अनुसार मनुष्य और दोनों पशुओंके चलनेपर छाया भी चलती है। 'काया' के स्थिर रहनेपर 'छाया' भी स्थिर रहती है। काया जब अपना हाथ उठाती है, सिर हिलाती-डुलाती है, तो छाया भी हाथ उठाती है और सिर हिलाती है। प्रतिबिम्बके विषयमें ऐसा नहीं होता है। शंकरका 'प्रतिबिम्बवाद' और दार्शनिक जगत का 'छायावाद' एक नहीं है।

[च] षड्दर्शन और उनमें चार नास्तिक दर्शन

मायावादिगण नास्तिक हैं, यह कहनेसे नास्तिक लोग यह सोच सकते हैं कि मायावादी लोग भी हमारे ही सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं, अतः यह समझा जाता है कि मायावादियोंके सृष्टिकर्त्ता शंकराचार्य भी नास्तिक हैं। नास्तिक्यवादके विभिन्न स्वरूप वर्त्तमान युगमें लक्ष्य किये जाते हैं। मैं यहाँ 'नास्तिक्य' शब्दका भाषागत अर्थ निवेदन कर रहा हूँ। साधारणतः 'भाषा' शब्दका क्या तात्पर्य है? इसका मौलिक तत्त्व अनुसन्धान करनेसे यह पता चलता है कि मानवके मानसिक चिन्तागत व्यापारके यान-वाहनको ही 'भाषा' कहा जाता है। इस भाषाके तत्त्वकी आलोचना करनेवालोंने भाषामें अन्तर्निहित चिन्ताकी अभिव्यक्तिको प्रकाशित करनेके लिए काव्य, व्याकरण, दर्शन इत्यादि अनेक प्रकारके विश्लेषणमूलक पद्धतियोंका प्रकाश किया है। भारतवर्षमें ही नहीं, अपितु पाश्चात्य देशोंमें भी दर्शनकी विभिन्न धाराओंको लक्ष्य किया जाता है। इनमें हमारे देशमें छह दर्शनोंने हजारों सालसे ख्याति प्राप्त की है। ये दर्शन इस प्रकार हैं—कपिलका **'सांख्य'**, पतञ्जलिका **'योगदर्शन'**, गौतमका **'न्याय'**, कनादका **'वैशेषिक'**, जैमिनीकी

'पूर्वमीमांसा' एवं व्यासदेवकी **'उत्तरमीमांसा'**। इनमें से व्यासदेवकी उत्तरमीमांसाको ब्रह्मसूत्र, वेदान्तसूत्र, शारीरकसूत्र इत्यादि विभिन्न संज्ञाओंसे अभिहित किया जाता है। **उक्त छह दर्शनोंमें 'न्याय' और 'वैशेषिक' एक ही चिन्ता द्वारा गठित हैं, 'सांख्य' और 'पातञ्जल' अन्य एक ही चिन्ता द्वारा गठित हैं। तथा इन चारों दर्शनोंने भारतवर्षमें नास्तिक्यकी ख्याति अर्जित की है।** इन चारों दर्शनोंको छोड़कर पूर्व और उत्तरमीमांसा ही आस्तिक्य दर्शनमें परिगणित हैं। उनमें भी पूर्वमीमांसामें आस्तिक्यवादके सम्बन्धमें नाना प्रकारके पूर्वपक्ष किये गये हैं, जिनके उत्तर ब्रह्मसूत्र (उत्तरमीमांसा) में ही प्रदत्त हुए हैं। इसीलिए व्यासदेवके दर्शनका नाम उत्तरमीमांसा है। अतः वस्तुतः आस्तिक्य-दर्शन कहनेसे वेदान्त-दर्शनका ही बोध होता है, अन्यान्य दर्शनोंको आस्तिक्य-दर्शन नहीं कहा जाता है। पहलेके जो चार दर्शन हैं, उन्हें नास्तिक्य-दर्शन क्यों कहते हैं, इसके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करना आवश्यक है। ये दर्शन वेदको प्रामाण्य नहीं मानते हैं, यहाँ तक कि ईश्वरके भी अस्तित्वको नहीं स्वीकार करते हैं। स्वयं भगवान् सर्वशक्तिमान् और परमब्रह्म या परमात्माके रूपमें आजतक उन दर्शनोंमें नहीं स्वीकृत हुए हैं, इसीलिए वे नास्तिक श्रेणीमें परिगणित हुए हैं। **अतः नास्तिक शब्दका अर्थ हुआ—जो वेदोंको नहीं मानते हैं तथा ईश्वरको सर्वशक्तिमान्, अचिन्त्य शक्तिमान् एवं अघटन-घटन-पटीयसी-शक्तिविशिष्ट नहीं स्वीकार करते हैं। यही नास्तिकोंका प्रधान लक्षण है। इतना ही नहीं, वे वेदोंको भी प्रमाणके रूपमें नहीं मानते हैं, अधिकन्तु वे कहते हैं—"वेद भी भ्रान्त हैं, क्योंकि वेदोंमें यह कहा गया है कि ईश्वरसे जगत् की सृष्टि हुई है।"** अतएव नास्तिकोंकी विचार-धारामें ईश्वरका कोई प्रकाश या विकाश नहीं है; उनकी भाषामें भी इस प्रकारकी बातें कहीं प्रकाशित नहीं होती हैं।

वेदोंके अस्वीकार करने के कारण ही बौद्धगण नास्तिक और मायावादीकी श्रेणीमें परिगणित हुए हैं। भारतीय समाज बौद्धोंको नास्तिक कहकर उनसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखता है, यहाँ तक कि आहार-विहार, आदान-प्रदान आदि कोई आचार उनके साथ नहीं करता है। बौद्धोंका पादाङ्कानुसरण करनेके कारण जैन लोग भी भारतीय समाजसे छिन्न हुए हैं। इसी प्रकार मुसलमान और ईसाइयोंके साथ भी छिन्न होकर भारतीय समाजने सामाजिक गठनमूलक परिकल्पनामें पृथ्वीके श्रेष्ठ स्थानपर

अधिकार प्राप्त किया है। मनुष्य यदि चिन्ताधाराके परम उन्नततम विषयमें किसी की स्वीकृति या अनुमोदन नहीं पाता है, तो उसे दुःसंग समझकर अलग कर देता है। दुःसंगका त्याग और सत्संग-ग्रहण ही मानव-जीवनकी उन्नतिका सोपान है। इसीलिए नास्तिकोंका संग सर्वतोभावेन परित्याज्य है। मायावादियोंको नास्तिकोंकी श्रेणीमें क्यों रखा गया, यहाँ इस प्रबन्धमें उसका स्पष्टीकरण आवश्यक समझता हूँ।

[छ] मायावादी नास्तिक हैं

अद्वयवादी बौद्धगण और अद्वैतवादी शाङ्करगण—दोनों ही मायावादी हैं, अतः नास्तिक हैं। नास्तिक शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ विचार करनेसे यह जाना जाता है—'न+अस्ति'—सन्धि द्वारा 'नास्ति' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस 'नास्ति' शब्दका अर्थ है—अस्तित्वाभाव अर्थात् अविद्यमानता। 'नहीं है'—जो इस विचारके ऊपर ही क्रियाकलाप और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षादि 'दर्शन' निरूपित करते हैं, वे ही नास्तिक हैं। 'नास्तिक' शब्दके उत्तर 'ता' प्रत्ययकर 'नास्तिकता' शब्द निष्पन्न हुआ है। अभिधानोंके सभी रचनाकार एक स्वरसे यह कहते हैं—**जिसकी दृष्टि 'मिथ्या' है अर्थात् कोई वस्तु ही जिसे सत्य दृष्टिगोचर नहीं होती, जो सर्वदा 'नेति' 'नेति' कर 'इति' का कोई सन्धान नहीं दे सकते हैं, वे ही नास्तिक हैं**। इतना ही नहीं, कोई कोई दार्शनिक, यथा—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, पतञ्जल, जैन, बौद्ध, आर्य-समाज, सिख-सम्प्रदाय आदि कोई भी भारतके प्राचीनतम शास्त्र और वेद-उपनिषदकी सत्यता स्वीकार नहीं करते हैं। ये सभी नास्तिक हैं। इसकी थोड़ी आलोचना मैंने पहले भी की है।

बौद्ध लोग स्पष्टरूपमें वेद एवं वेदोंकी उक्तियोंको अस्वीकारकर नास्तिककी श्रेणीमें भुक्त हुए हैं। यहाँ तक कि **शब्द-कल्पद्रुम नामक संस्कृत अभिधान** (१८५० शकाब्दमें हितवादी नृसिंहाख्य मुद्रायन्त्रसे बंगला लिपिमें मुद्रित एवं देवनागरी लिपिमें चौखम्बा बुक डिपो, काशीसे प्रकाशित) में देखा जाता है कि नास्तिक छह प्रकारका होता है, यथा—(१) माध्यमिक, (२) योगाचार, (३) सौत्रान्तिक, (४) वैभाषिक, (५) चार्वाक और (६) दिगम्बर। ये छह श्रेणीके दार्शनिकगण सर्वतोभावेन नास्तिक श्रेणीमुक्त होनेके कारण भारतके नैष्ठिक आस्तिक्य सम्प्रदायसे बहिष्कृत हुए हैं। ये सभी मायावादी हैं।

बौद्ध अमरसिंह कृत 'अमरकोष', जो भारत में सर्वत्र प्रचारित है, इसके

स्वर्गवर्गके २२५ वें वाक्य में लिखा है—'मिथ्या दृष्टि नास्तिकता' अर्थात् जिनकी मिथ्या दृष्टि है, वे ही नास्तिक हैं। समस्त प्रत्यक्ष वस्तुओंको ही मिथ्या सिद्ध करना नास्तिकता है। अब आपलोग विचारकर देखें कि मायावादिगण नास्तिक हैं या नहीं। वे उच्च स्वरसे यह सिद्ध करनेकी आप्राण चेष्टा करते हैं कि 'जगत् मिथ्या' है। संस्कृत अभिधान 'शब्द-कल्पद्रुमः' में उद्धृत है—*नास्ति यज्ञफलं, सदसत्त्वे अस्ति-नास्तीत्यव्ययं नास्ति सुकृतिं, नास्ति परलोकः इत्यादि बुद्धिर्नास्तिकता (इति भरतः)* अर्थात् जो परलोकमें विश्वास नहीं करते हैं, मुखसे विश्वास करनेपर भी यह कहते हैं कि कार्यतः परलोकका नित्य अस्तित्व नहीं है, वह काल्पनिकमात्र और मिथ्या है, उनकी बुद्धि नास्तिक है। 'नास्ति' या 'नहीं' एवं 'मिथ्या' एक ही है। अभी अनेक पाश्चात्य दार्शनिकों में भी, यहाँ तक कि बाइविलकी चिन्ता-धारामें भी परलोककी स्वीकृति नहीं पाई जाती है। अतएव भारतीय पारमार्थिक समाज ईसाईनोंको अस्पृश्यमें गणित करते हैं। उनके साथ खाना-पीना, आदान-प्रदान करना इत्यादि नहीं करते हैं। मुसलमान भी इसी श्रेणीमें भुक्त हैं।

अधिकांश नास्तिक 'नेति' 'नेति' विचार द्वारा कहते हैं कि भगवान्‌का आकार नहीं है, भगवान्‌में गुण नहीं है, इत्यादि। शाङ्कर मायावादिगण इसके प्रधान अधिनेता हैं। इसीलिए मायावादियोंको नास्तिक कहनेमें हमें कोई कुण्ठा नहीं होती तथापि भारतीय सनातन धर्मावलम्बी लोग शाङ्कर मायावादियोंको बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान आदिकी भाँति अस्पृश्य नहीं समझकर समाजसे च्युत नहीं करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि आचार्य शाङ्करने अपने इस नास्तिक्य विचारको वेद तथा उपनिषद्से ही सिद्ध करनेकी व्यर्थ चेष्टा की है। जब कलिकालके जीव असुरोंकी भाँति नास्तिक हो जाएँगे, तभी कलिकालोचित धर्म रक्षित होगा। स्वयं शाङ्करने इसी उद्देश्यसे अपने अद्वैतवादका प्रचार किया कि कलिके धर्मका प्रचार होनेसे ही असुरोंका राजत्व पूर्ववत् रहेगा। शिवने स्वयं पशुपति एवं भूतनाथके नामसे अपना परिचय दिया है। अतः भूत-प्रेतका धर्म एवं पाशववृत्ति प्रचुर परिमाणमें प्रचारित होनेसे ही शिवका राजत्व अटूट रहेगा। इसीलिए कलिकालमें अद्वैतवाद या मायावादका प्रबल प्रचार हो रहा है। इसके बन्द नहीं होनेसे कलिका ध्वंस नहीं होगा और सत्ययुगका आविर्भाव नहीं होगा, जीवोंको शान्ति नहीं मिलेगी।

[ज] मायावादका आसुरिक विचार

अब मैं 'मायावादकी जीवनी' ग्रन्थके उपसंहारका उपसंहारकर पाठकोंसे विदाई ग्रहण करूँगा। यद्यपि मायावाद-विचारका उपसंहार अतिसहजसाध्य और स्वाभाविक है एवं इस क्षुद्र ग्रन्थमें कुछ अधिक लिखनेका सुयोग भी नहीं है, तथापि यदि पाठक इस सम्बन्धमें कुछ अधिक जानना चाहते हैं, तो उनके कौतूहलकी निवृत्तिके लिए पृथक् रूपमें साक्षात् आलोचनाकी जा सकती है। वर्त्तमान सर्ववादिसम्मत, सर्वजनपूजित शास्त्रशिरोमणिस्वरूप श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंकी आलोचनाकर मैं अपने वक्तव्य विषयकी परिसमाप्ति कर रहा हूँ। भारतवर्ष ही क्यों, भारतसे बाहर म्लेच्छ, पुलिंद आदि सभी देश गीताका सम्मान करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि एक लाख श्लोकोंसे समन्वित वेदव्यासका महाभारत विश्वके काव्य इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें एक लाख श्लोक हैं, तथापि गीता ही इसमें अपूर्व है एवं इस गीतामें संक्षेपतः साधारण जीवोंके लिए समग्र वेद, उपनिषद्, महाभारत आदि शिक्षाओंका सार लिपिबद्ध है, इसमें किसीका मतभेद नहीं है।

आजकल आसुरिक जगत्में धार्मिक सज्जासे सज्जित होकर आसुरिक धर्म-प्रचारके लिए अनेक लोग विवेकहीनकी भाँति गीताके विरुद्ध नाना प्रकारकी कूटोक्तियाँ करते हुए विश्वमें विचरण करते हुए देखे जाते हैं। हमलोग ऐसे मत-प्रचारकोंको धर्मध्वजी, प्रतारक और हिन्दू-धर्मका ध्वंसकारी समझते हैं। वस्तुतः ये लोग ही आसुरिक धर्ममें प्रतिष्ठित हैं। आपलोगोंको यह स्मरण रखना होगा कि संन्यासी वेषमात्र ही हमारे लिए आदर्श नहीं है, इसका उज्ज्वलतम उदाहरण है—रावण, जो कि संन्यासीके वेषमें सीताका हरण करने गया था। रावणका संन्यास आसुरिक संन्यास है। श्रीरामचन्द्रने उसकी हत्या की। मूलवस्तुसे शक्तिका अपहरण करना ही असुरोंकी प्रवृत्ति है। भगवान निःशक्तिक (शक्तिहीन) रहें—यही असुरोंकी चेष्टा है। मायावाद-दर्शनमें यही सबकी अपेक्षा परिस्फुट सिद्धान्त है। वे ब्रह्म केवल निराकर, निर्विशेष ही नहीं, वरं वे निःशक्तिक भी है; उन्हें निःशक्तिक सिद्ध कर देनेसे हम ब्रह्मके ऊपर अपनी यथेच्छाचारिता कर सकेंगे—यही आसुरिक धर्म है।

इसलिए गीताके सोलहवें अध्यायके पाँचवें श्लोकमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने समस्त जीवोंके कल्याणके लिए अर्जुनको उपलक्ष्यकर कहा है—

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।

(गीता १६/५)

[दैवी सम्पद मोक्षके अनुकूल है तथा आसुरी सम्पद संसार-बन्धनका कारण है, अतएव शोक मत करो।]

अर्थात् श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा—आसुरिक सम्पद बन्धन-दशामें विशेष क्लेशकर है। जीवमात्र ही शान्तिकी अभिलाषा करता है। किन्तु, आसुरिक सम्पद दुःख देता है। अतः उसके साथ अभिसन्धि किसीके लिए उचित नहीं है। रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, कंस, जरासन्ध आदि उच्च ब्राह्मण-कुलोद्भूत असुरोंकी जीवनीकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट पता चलता है कि आसुरिक रीति-नीति-धर्म अत्यन्त क्लेशकर हैं एवं इतना ही नहीं यह अत्यन्त अधःपतित जीवनका उदाहरण है। जीवोंका कल्याण करनेके लिए जब तक गीताके द्वारा यह स्पष्टरूपसे नहीं प्रकाशित किया जाएगा कि कौन-कौन मतवादिगण एवं कौन-कौन तथाकथित धार्मिक नामधारी व्यक्तिगण आसुरिक (श्रेणीके) हैं, तब तक कलिहत जीवोंका कोई मंगल नहीं होगा।

इसीलिए गीता माहात्म्यमें कहा गया है—

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

अतः गीता ही सर्वतोभावेन गाया जाना कर्त्तव्य है, अन्य शास्त्रोंके विस्तारका क्या प्रयोजन है? क्योंकि पद्मनाभ स्वयं श्रीकृष्ण इस गीता-शास्त्रके वक्ता हैं। जहाँ स्वयं कृष्ण वक्तास्वरूपमें शिक्षा दे रहे हैं, वहाँ हम निश्चिन्त होकर उसे ग्रहण कर सकते हैं। हमें जिनके धाममें जाना होगा एवं जिनके निकट जाकर शान्ति लाभ करना होगी, वे स्वयं वक्ता होकर हमें आह्वान कर रहे हैं, इसकी अपेक्षा अधिक सौभाग्यका विषय और क्या हो सकता है? अतः गीतोपनिषद्की शिक्षाका अवलम्बनकर ही हम भगवद्भक्तिके पथपर अग्रसर होंगे; निर्विशेष ज्ञानके कठोर, शुष्क, विषमय शिक्षाको नहीं ग्रहण करेंगे। वेदव्यासने वेदान्तदर्शनमें भी हमें यही शिक्षा दी है। भक्ति ही श्रेष्ठ है, ज्ञानसे कभी भी परात्पर मुक्ति नहीं

प्राप्त होती है। शास्त्र-शिरोमणि श्रीमद्भागवत शिक्षा देते हैं—

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ।।

(श्रीमद्भा.१०/२/३२)

अर्थात् कृच्छ्र ज्ञान-साधनके द्वारा परम पदका लाभ करनेपर भी 'भगवान् नहीं हैं, भगवान् निःशक्तिक हैं, भगवान् निराकार हैं, भगवान् मायाग्रस्त या अविद्याग्रस्त हैं'—ऐसे विचारपरायण होकर भगवान्‌का अनादर करनेके कारण वे अधःपतित होते हैं। गीतामें श्रीकृष्ण स्वयं स्पष्टरूपमें कहते हैं—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।।

(गीता १६/६)

हे अर्जुन! इस संसारमें अर्थात् मेरे सृष्ट जगत्‌में दैव एवं आसुर दो प्रकारके जीव सृष्ट हुए हैं। मैंने पूर्व-पूर्व अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक 'दैव' के सम्बन्धमें बताया, अब आसुर प्रकृतिके मनुष्योंके विषयमें मुझसे श्रवण करो। इसके ही अनुरूप, यहाँ तक कि एक ही वाक्य पद्मपुराणमें भी दृष्ट होता है, केवल तृतीय और चतुर्थ चरणमें सामान्य अन्तर दिखाई पड़ता है—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
विष्णुभक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः।।

शास्त्रकी एक ही उक्ति विभिन्न स्थलोंमें देखी जा रही है। गीताकी अपेक्षा पद्मपुराणकी विशेषता यह है कि गीताकी स्पष्ट बातको भी पद्मपुराणमें अत्यन्त सुस्पष्टरूपमें कहा गया है। यहाँ यह विवेचना करना आवश्यक है कि मायावादिगण किस-किस उक्तिके अन्तर्भुक्त हो रहे हैं, जिसके द्वारा हम उन्हें 'असुर' सिद्ध कर सकते हैं।

पद्मपुराणमें कहा गया है—

"विष्णुभक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः"

अर्थात् केवल विष्णुभक्तगण ही देवता हैं एवं इसके विपरीत अर्थात् जो विष्णुभक्त नहीं हैं, वे ही असुर हैं; यह समस्त शास्त्रोंमें परिलक्षित होता है। रावण राक्षस एवं प्रधान असुरके रूपमें जगत्‌में सुविदित हैं। वे अपने राजप्रासादमें स्वयं ही चामुण्डा या दुर्गादेवीकी पूजा करते थे।

किन्तु सशक्तिक विष्णु रामचन्द्रकी सेवा करना तो दूर रहे, उनकी अङ्कलक्ष्मी सीतादेवीका हरणकर उसने जगत्को शिक्षा दी थी कि मूल परब्रह्म, परमात्मा रामचन्द्रकी किन्हीं शक्तिका रहना उचित नहीं, उन्हें निःशक्तिक रखना होगा—यही अद्वैतवादी मायावादियोंका प्रधान विचार है। स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रने रावणका वधकर समस्त जीवोंको यह शिक्षा दी है कि मायावादी असुर श्रेणीभुक्त हैं। वे अपने गृहदेवता दुर्गादेवीकी उपासना करते थे, तथापि दुर्गादेवी रावणकी रक्षा नहीं कर सकीं एवं रक्षा की भी नहीं, बल्कि रावणके विनाशमें सहायक ही हुई थीं। श्रीरामचन्द्र स्वयं विष्णु हैं—यह लोकप्रसिद्ध सिद्धान्त है एवं अनेक शास्त्रोंमें यह वर्णित भी हुआ है। दशावतार-स्तोत्रमें वे विष्णुके सप्तम अवतारके रूपमें वर्णित हुए हैं। सभी मायावादी असुरगण विष्णुविरोधी हैं। पद्मपुराणमें जितनी स्पष्ट भाषामें मायावादीके स्वरूपका निर्णय हुआ है, गीतामें उससे भी सूक्ष्मतम विचारके द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि मायावाद-धर्म आसुरिक है। **गीताके सोहलवें अध्यायके आठवें श्लोकमें मायावादी असुरोंका एवं नास्तिकोंका पूर्णस्वरूप व्यक्त हुआ है**, यथा—

"असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहेतुकम्।।"

(गीता १६/८)

अर्थात् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—"असुर-स्वभावके व्यक्तिगण जगत्को 'असत्य' और 'अनीश्वर' कहते हैं, वे कहते हैं कि इस जगत्का कोई ईश्वर अर्थात् नियन्ता नहीं है। स्त्री-पुरुषके परस्पर कामजनित संयोगसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है।" अब आपलोग अद्वैतवादियों तथा मायावादियोंके प्रधान सिद्धान्तके विषयमें चिन्ता करें—"**जगत् असत्य अर्थात् मिथ्या है।" जो जगत्को मिथ्या, असत्य, अलीक, स्वप्नवत् कहेंगे, वे ही असुर श्रेणीभुक्त हैं। अतएव वेदव्यासके वर्णनमें स्वयं श्रीकृष्णकी उक्ति द्वारा मायावादी लोग असुर सिद्ध होते हैं।** चार्वाक आदि 'लोकायतिक' के मतानुसार भी जगत्का कोई सृष्टिकर्त्ता नहीं है, परकाल (भविष्यत काल) के नामका कोई काल अथवा जगत् नहीं है, यह जगत् ही यथासर्वस्व है। चार्वाकका विचार भी उसी प्रकारका है—

"ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत् यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्।"

अर्थात् जब तक जीवन है, चोरी, डकैती आदि के द्वारा अर्थ उपार्जन

आदि कर सुखपूर्वक रहना ही कर्त्तव्य है। 'भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः?'—मनुष्यके मरनेके बाद पुनः आगमनकी कोई सम्भावना नहीं है, अतः ऋण करनेपर भी उसे चुकाना नहीं पड़ेगा।

गीताके उक्त श्लोकके 'असत्य' शब्दकी व्याख्या हुई। अब अन्य प्रत्येक शब्दके साथ भी मायावादियोंके विचारकी समानता दिखाई जा सकती है। मायावादिगण ईश्वरके कर्त्तृत्वको नहीं स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार जो इस प्रकार जगत्‌कदी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं, वे निःशक्तिक हैं तथा अविद्याग्रस्त मायिक जीवकी श्रेणीके हैं। इसीलिए आचार्य शङ्करने ब्रह्मकी विविध श्रेणियोंका निरूपण किया है। **'एक एव अद्वितीयं ब्रह्म'**—वे निर्विशेष हैं। किन्तु सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कर्त्ता ब्रह्म मायाबद्ध, अविद्याग्रस्त होकर सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते हैं, ये भी जीवके पर्यायमें परिगणित हैं। कहीं कहीं दयाकर अद्वैतवादियोंने इन्हें ईश्वर-ब्रह्मकी संज्ञा दी है। माया या अविद्या द्वारा आवृत होकर ब्रह्मके इस विराट अंशने ईश्वर नाम प्राप्त किया है। जीव शब्द निरर्थक और मिथ्या है; अविद्याग्रस्त ब्रह्मके क्षुद्रतम अंशको जीव कहा जाता है। वस्तुतः जीव मिथ्या है। यहाँ 'सिद्धान्त-रत्नमाला' के कुछ श्लोकोंको उद्धतकर विषयको और स्पष्ट कर रहा हूँ—

[झ] अद्वैतवाद दूशनम्

अद्वैतवादिनां ब्रह्म निर्विशेषं विकल्पितम्।
ब्रह्म तु ब्रह्मसूत्रस्य सृष्टि-स्थित्यादि-कारणम्।।१।।
दृष्ट्वैवं निर्मितं वाक्यं मुख्यं गौणमितिद्वयम्।
ब्रह्मणो लक्षणे भेदौ ज्ञानिनां शोभते कथम्।।२।।
'जन्माद्यस्य यतो' वाक्ये ब्रह्म सशक्तिकं भवेत्।
क्लीवेन शक्तिहीनेन सृष्ट्यादि साध्यते कथम्।।३।।
शक्तिनां परिहारे तु प्रत्यक्षादि प्रबाधते।
शास्त्रयुक्त्या विना वस्तु नास्तिकेनादृतं हि तत्।।४।।

अर्थात् अद्वैतवादियोंका ब्रह्म निर्विशेषके रूपमें विशेषरूपसे कल्पित हुआ है अर्थात् सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि क्रियाएँ निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वके लिए सम्भवपर नहीं हैं। अतएव ब्रह्मसूत्र वेदान्तदर्शनमें 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्रके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदिके कारणरूपमें ब्रह्मको ही निर्देशित

किया गया है। यदि ब्रह्म सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदिके कारण हों, तो ब्रह्म निःशक्तिक, निर्विशेषके रूपमें नहीं प्रतिपन्न हो सकते हैं। वेद-वेदान्तके द्वारा निर्णीत ऐसे वाक्योंसे ब्रह्मके लक्षणोंमें दो प्रकारके भेदकी सृष्टि हुई है—मुख्य और गौण। अतः ज्ञानियोंके पक्षमें यह किस प्रकार शोभा पा सकता है? जहाँ अद्वैत कहने से द्वितीयरहितका बोध होता है, वहाँ ब्रह्मकी द्विविधता तनिक भी शोभा नहीं पाती है। इसके अतिरिक्त वेदान्तके 'जन्माद्यस्य यतः' वाक्यके अनुसार ब्रह्म सृष्टि करने वाले हो जाते हैं, अतएव वे सशक्तिक ब्रह्म किसी भी प्रकारसे निःशक्तिक नहीं सिद्ध होते हैं। निःशक्तिक हो जानेसे ब्रह्म क्लीव हो जाएँगे। क्लीव ब्रह्म अर्थात् किसी शक्तिहीनके द्वारा सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि क्रियाएँ किस प्रकार सम्पन्न होंगी? शक्तिका परिहार कर देनेसे प्रत्यक्षादि प्रमाणकी बाधा होती है (अर्थात् वह अप्रामाणिक हो जाता है)। प्रत्यक्ष रूपमें शक्तिकी क्रियाके दर्शन-अनुभव आदि होते हैं। अतएव शास्त्रयुक्तिसे अतीत वस्तु नास्तिक असुरोंके द्वारा ही आदृत हो सकता है। किन्तु मंगलकारी दैवभावापन्न व्यक्तियोंके निकट अद्वैतवादियोंके आदरकी वस्तु कभी भी आदृत या स्वीकृत नहीं हो सकती है।

यहाँ तक कि उक्त **'सिद्धान्त-रत्नमाला'** ग्रन्थके 'सांख्य-मतदूषणम्' शीर्षकके निम्नलिखत दो श्लोकोंकी आलोचना करनेसे आसुरिक चिन्ताका और भी परिचय प्राप्त होगा—

[ञ] सांख्यमतदूषणम्

केचिदाहुः प्रकृत्यैव विश्वसृष्टिर्व्यवस्थिता।
तेषां वै पुरुषः क्लीवः कलत्रं हि तथैव च॥१॥
प्रत्यभावे कुमारीणां सन्ततिर्यदि दृश्यते।
तेषां मते प्रशंसार्हा समाजे सा विवर्जिता॥२॥

निरीश्वर सांख्यकार कपिल मुनि कहना चाहते हैं—

"विश्वके सृष्टि-कार्यमें ईश्वरकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रकृतिने ही सृष्टिकर्त्रीके रूपमें जगत्‌को प्रसव किया है, इसमें ईश्वरका कोई कर्त्तृत्व नहीं है। यदि कोई ईश्वर या पुरुषकी कथा (बात) स्वीकार करना चाहें, तो भी वह पुरुष क्लीव है।" उनके मतमें ईश्वरमें सृष्टि-कर्त्तृत्व नहीं है, अतः वह पुरुष क्लीव है। किन्तु हमारा कहना है कि यदि पुरुषको क्लीव कहा जाय, तो प्रकृति या कलत्र भी क्लीव है।

वैयाकरणिकगणने सर्ववादिसम्मतरूपसे यह स्थिर किया है कि 'कलत्र' शब्द क्लीव-लिंग अर्थात् स्त्री-पुरुष-लिंगसे बहिर्भूत निःशक्तिक है। किन्तु पुरुषको कहीं भी क्लीव नहीं कहा गया है। साथ ही पुरुषविहीन नारीके सन्तान आदि असम्भव हैं। पुरुषके संगसे रहित नारीके सन्तान आदि सम्भव नहीं हैं अर्थात् केवल नारी प्रसव नहीं कर सकती है। अतः यहाँ यदि पुरुषविहीन प्रकृति सृष्टिकर्त्री हो, तो वह प्रकृति भी क्लीवस्वरूप या हेय है। उदाहरणस्वरूप—पतिके अभावमें कुमारियोंको यदि सन्तान-सन्तति देखी जाय, तो सांख्यकारोंके मतसे वह प्रशंसनीय हो सकता है, किन्तु धार्मिक समाजमें वह कुमारी असतीके रूपमें विवर्जित होगी। क्योंकि पतिविहीन कुमारीके सन्तान दृष्टिगोचर होनेपर समाज असती नारीके रूपमें उससे घृणा करेगा। अतः सांख्य मतका ऐसा प्रकृतिवाद धार्मिक समाजमें हेय, वर्जित और घृणित है।

गौतम और कनादके न्याय और वैशेषिक दर्शन भी नास्तिक्य दर्शन हैं। इनमें से कोई भी ईश्वरका जगत्-कर्त्तृत्व नहीं स्वीकार करते हैं। यहाँ तक कि उनके दर्शनमें वेद भी प्रामाण्यके रूपमें स्वीकृत नहीं हैं। अतएव 'सिद्धान्त रत्नमाला' ग्रन्थमें जो लिपिबद्ध हुआ है, उसे भी यहाँ उद्धत किया जा रहा है, यथा—

[ट] न्यायमतदूषणम्

जडाणुमिलने सृष्टिः जीवविश्वादिकं किल।
स्थितिस्तेषां प्रमासिद्धा परिवर्त्तनमूलका।।१।।
ध्वंसस्तु कालचक्रेण परमाणु-विभाजने।
स्वभावैर्घटितं सर्व किमीशस्य प्रयोजनम्।।२।।
घट-पट-गुणज्ञाने जडद्रव्य-विचारणे।
तार्किकानां महामोक्षमन्यायेन कथं भवेत्।।३।।
'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'।
इतिन्यायात् पदार्थत्वं प्राप्नोति नास्तिकः सदा।।४।।
असत्कारणवादे हि स्वीकृताऽभाव-संस्थितिः।
सत्ताहीनस्य सत्ता तु युक्तिहीना भवेत् सदा।।५।।
कार्यकारणयोरीत्या जडान्न चेतनोद्भवः।
गीतावाक्यं सदामान्यं 'नाभावो विद्यते सतः'।।६।।

नैयायिक गौतम और कनाद कहते हैं—जीव एवं विश्व आदिकी सृष्टि

जड़ अणु-परमाणुके मिलनसे ही हुई है, इसमें ईश्वर का कोई कर्त्तृत्व नहीं है। यह सृष्टि परिवर्त्तनशील है, यह प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध है। कालके प्रभावसे यह विश्व कालचक्रके मुखमें पतित होकर ध्वंस हो जाता है। इस विश्वका जो मूल कारण परमाणुका संयोग है, उसके वियोग होनेसे ही विश्वका ध्वंस अनिवार्य है। अतः इसमें ईश्वरकी क्या प्रयोजनीयता है। घट-पट-गुणद्रव्यके ज्ञानसे एवं जड़द्रव्यके विचारसे तार्किक लोगोंका महामोक्ष अन्यायपूर्वक किस प्रकार सम्भव होता है? न्याय दर्शनके नामपर अन्याय विचार द्वारा कभी भी युक्ति-सिद्ध सुफल नहीं फलेगा। इसका कारण है—'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' अर्थात् जो जिस प्रकार भावना करता है, इसकी वैसी ही सिद्धि होती है। इस न्यायानुसार परमाणुवादी नास्तिकगण जड़परार्थताको प्राप्त होवेंगे। घट-पट, जड़-अणु-परमाणुकी चिन्ता करते-करते मात्र वह जड़त्वको ही प्राप्त होता है। वस्तुतः वास्तव-मोक्ष सुदूर पराहत है। साधारण युक्ति-तर्कके विचारसे कार्य-कारण-रीतिके अनुसार देखनेसे असत्-कारणवादियोंके असत् वस्तुकी संस्थिति किस प्रकार स्वीकृत होती है अर्थात् सत्ताहीन वस्तुकी सत्ता नितान्त युक्तिहीन हो पड़ती है। गीताशास्त्र कार्य-कारण-रीतिके अनुसार यह कहता है कि चेतन वस्तुका उद्भव कभी जड़ वस्तुसे सम्भव नहीं है। इसीलिए गीता हमें शिक्षा देती है—'नाभावो विद्यते सतः' अर्थात् अभाव जातीय वस्तुकी विद्यमानता कभी स्वीकृत नहीं है। अतएव न्याय-दर्शनके विचारको गीताशास्त्रने स्वयं आसुरिकके रूपमें प्रकाशित किया है। उक्त सोलहवें अध्यायके आठवें श्लोकके 'जगदाहुरनीश्वरं' वाक्य द्वारा ही यह प्रमाणित होता है। इसके अतिरिक्त 'अपस्परसम्भूतं' या 'स्वभावसे उत्पन्न'—इसके द्वारा यह विचार करना कि ईश्वरका कोई कर्त्तृत्व नहीं है, यही आसुरिक ज्ञान है। उक्त 'सिद्धान्त-रत्नमाला' से उद्धृत बारह श्लोकोंमें नास्तिक्य दर्शन द्वारा आसुरिक विचारका यह अर्थ सिद्ध किया गया है।

[ठ] संक्षेपतः मायावादकी असारता

आचार्य शङ्कर द्वारा प्रचारित दर्शनको हमने प्रच्छन्न-बौद्धमत, मायावाद एवं असत्-शास्त्र तथा सबसे अन्तमें आसुरिक शिक्षा कहकर सिद्ध किया है अर्थात् शाङ्कर अद्वैतवादकी धारा नास्तिक्यवादसे परिपूर्ण है, यह भी प्रमाणित हुआ है। वेदव्यासने स्वयं पद्मपुराण और गीताशास्त्रमें स्पष्टरूपमें <u>शाङ्कर दर्शनको प्रच्छन्न-बौद्ध, असत्-शास्त्र एवं आसुरिक बताया है।</u> हमने इस ग्रन्थके (६) पृष्ठमें पद्मपुराणमें वर्णित 'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं

बौद्धमुच्यते' श्लोकको उद्धृत किया है। ग्रन्थके (८) पृष्ठमें स्वयं शङ्कर पार्वतीसे कह रहे हैं—"मैं ब्राह्मणके रूपमें कलिकालमें आविर्भूत होकर अवैदिक शास्त्रका प्रचार करूँगा।" मैं पाठकोंकी दृष्टि इस उक्तिके प्रति आकर्षित कर रहा हूँ। 'मायावादकी जीवनी' के (९०) पृष्ठमें वर्णित आसुरिक धर्मके विषयमें स्वयं भगवान श्रीकृष्णने ही गीताशास्त्रमें उल्लेख किया है—'जगत् असत्य अर्थात् मिथ्या है' एवं 'जगत् का कोई ईश्वर नहीं है'—जिसका ऐसा विचार है, वह आसुरिक धर्ममें प्रतिष्ठित है। हमारे देशमें 'नास्तिक' और 'असुर' शब्द गाली-गलौजके रूपमें व्यवहृत होते हैं। वस्तुतः इन दोनों शब्दोंको गंदी गालीके रूपमें स्वीकार करना कर्त्तव्य है। तथापि, मैं उक्तरूप कठोर उक्ति कहनेमें भी किसी प्रकारकी दुविधा बोध नहीं कर रहा हूँ।

कलिकालका प्रभाव अत्यन्त बढ़ रहा है, कलिके हाथोंसे उनकी रक्षा करनेके लिए मैं, प्रकृत-पन्थाको गोपन नहीं करते हुए, स्पष्टरूपमें इसे व्यक्त करनेके लिए प्रस्तुत हुआ हूँ। अधिकांश क्षेत्रमें विशेषतः पण्डित श्रेणीके लोगोंमें मैं यह देखता हूँ कि वे अद्वैतवादी हैं, इसका मूल कारण यह है कि संस्कृत-शिक्षा-मन्दिर, स्कूल, कॉलेजमें अधिकांश लोग नास्तिक आसुरिक धर्ममें प्रतिष्ठित हैं। अद्वैतवाद पूर्णतः युक्तिहीन एवं शास्त्र-प्रमाणहीन है—यह जानना उनलोगोंके लिए नितान्त आवश्यक है। कहीं कहीं तो यह जाननेपर भी वे अपने मतके पोषण तथा रक्षणमें व्यस्त रहते हैं।

आचार्य शङ्करने जिस प्रकार वेदान्त-दर्शनकी व्याख्या या भाष्य किया है, वह बिल्कुल ही असंगत और युक्तिहीन है। 'एकमेवाद्वितीयम्' वाक्यकी उन्होंने जैसी व्याख्या की है, वह बिल्कुल ही संगत नहीं है। 'अद्वैत' शब्दका अर्थ 'द्वितीय-रहित' नहीं है, बल्कि यह है कि असमोर्द्ध्व ईश्वर ही एक श्रेष्ठतत्त्व हैं। 'एक' कहनेसे निर्विशेष गाणितिक '१' का बोध नहीं होता है, क्योंकि वह शून्यका प्रतीक है। सभी वैष्णवाचार्योंने यही सिद्ध किया है। शास्त्रयुक्तिकी सीमा नहीं पानेके कारण 'नेति' 'नेति' कर सबको हवावें उड़ा देनेकी अपचेष्टा होती है। अज्ञ, ज्ञानहीन शिशुगण ही 'ना' 'ना' चित्कारकर रोदन करते हैं। बालकोंके रोदनमें 'ना' 'ना' रहनेपर भी सब कुछ नास्किता में परिणत नहीं हो जाएँगे। पिता-माता प्रबोध देकर शिशुको सत्-शिक्षा देते हैं। वेद-उपनिषद् महाभारत आदि

शास्त्रसमूहकी परिभाषाओंके गम्भीर-तत्त्वमें नहीं प्रवेश कर पानेके कारण ही शब्दवृत्तिपर नाना प्रकारके अविचार आ पड़ते हैं। इसे ही 'लक्षणा' कहा जाता है। शब्दकी अभिधा वृत्तिका त्यागकर लक्षणाका आनुगत्य करना ही नास्तिकता है। आचार्य शङ्करने नास्तिक्यवादरूप लक्षणावृत्तिद्वारा ब्रह्मवाद-स्थापनका अयथा प्रयास किया है। किन्तु अभिधावृत्तिमें ब्रह्म पूर्ण, सावयव, सशक्तिक और सविशेष तत्त्व हैं। वह स्वरूपतः और गुणतः असीम और निरतिशय वृहत्वयुक्त है। जिससे इस जगत्के जन्म आदि हुए हैं, वही ब्रह्म है—'जन्माद्यस्य यतः' (वेदान्तदर्शन १/१/२) 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि उपनिषद् वाक्य यही प्रमाणित करते हैं। आचार्य रामानुज कहते हैं—"सर्वत्रवृहत्व-गुणयोगेन--------मुख्यवृत्तः।" (श्रीभाष्य १/१/१) अतः परमेश्वर ही शास्त्र और वैष्णवोंके आदृत ब्रह्म हैं एवं ये 'ब्रह्म' आचार्य शङ्कर द्वारा कथित ब्रह्मसे सम्पूर्ण पृथक हैं।

वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं श्रीचैतन्यात्मानं विश्वयोनिं महान्तम्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।।

अतएव वैष्णव आचार्योंके वेद-उपनिषद् आदि एवं वेदान्त-दर्शनके भाष्य और व्याख्याएँ सर्वदा आलोचनीय हैं। यदि देशमें सत्शिक्षाका प्रचलन करना हो, तो श्रीमध्व, रामानुज, विष्णुस्वामी, निम्बादित्य आदि एवं सर्वोपरि श्रीलबलदेव विद्याभूषण प्रभुके 'गोविन्द-भाष्य' का प्रचार और आलोचना होना एकान्त आवश्यक है।

श्लोक–सूत्र–मन्त्र–भाष्य–टीका–कारिका–सूची

अ

अजित सुत इति पाठे......... १५
अञ्जनस्य सुतः................. १५
अतएव पद्मपुराणे..................८
अतएवोक्तं दुःख २३
अतथ्यानि वितथ्यानि ७
अतस्त्वं सदसदुभयान् २
अतो गर्भान्निसृत्य ४५
अथ रावणो लङ्काधिपतिः १४
अद्वैतवादिनां ब्रह्म............... ९१
अद्वैतवीथी–पथिकैः.............. ६४
अनवगतौ ब्रह्मात्मभावं ५४
अनुह्लादस्य सूर्यायां ४१
अपरस्पर सम्भूतं................ ९४
अयार्थं श्रुतिवाक्यानां ८
अप्रेमयमिति वा................. २७
अवशिष्टं भवेत् २७
असत्कारणवादे हि.............. ९३
असत्यमप्रतिष्ठन्ते ९०
असिना तत्त्वमसिना............. ६६
अस्तु वा पापिनां..................८
अस्य च युक्तायुक्तत्वे........ ५४
अहं वेत्ति शुको वेत्ति ६३
अहं ब्रह्मास्मि ३

आ

आकाशमिव निर्लेपां २१
आकाशां निर्लेपां................ २७
आनन्दघनं शून्यम् ३३
आनन्दमयोऽभ्यासात्............. ५४
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः २
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्..... २
आभातीदं विश्वं १९
आरुह्य कृच्छ्रेण परं............८९

इ

इदं भागवतं नाम............... ४६
इदन्तु सर्वेषामनुभव............. १९
इन्द्रजाल भ्रमे निवृत्ते........... १९

उ

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोन्य .. २२
उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्य . २३

ऋ

ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्.......९०

ए

एकमेवाद्वितीयं ३, ९१
एकान्त सुखम् ३३
एते चांशकलापुंसः..............८०
एते सप्त शाक्यवंशावतीर्णे १२
एष धरणीमण्डे पूर्वबुद्ध........ १३
एष मोहं सृजान्याशु ७

ओ

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं........ ३,

क

केणादेन तु सम्प्रोक्तं ८
कन्यां कीर्त्तिमतिं ५२
कर्मस्वरूप–त्याज्यत्वमत्र ८
कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो........ १५
कार्यकारणयोरीत्या............... ९३
कार्ये कारणता जाता २६

कार्ये हि कारणं २६
कीकटेषु मध्येगया १५
केचन बौद्धा बाह्येषु २२
केचिदाहुः प्रकृत्यैव ९२

ग

गीता सुगीता कर्त्तव्या ८८
गुरु-गोत्रादतः कौत्सास्ते १३
गौतमश्चार्कर्किबन्धुश्च १२
गौतमेन तथा न्यायं ८

घ

घट-पट-गुणज्ञाने................ ९३

च

चकार मोहशास्त्रामि ३७
चित्रं वटतरोर्म्ले ३२

ज

जन्माद्यस्य यतः................. ९६
जन्माद्यस्य यतो ९१
जडानुमिलने सृष्टिः ९३
ज्येष्ठ-शुक्ल द्वितीयायां १५

त

तत् द्विविधं तदिदं २३
ततः कलौ सम्प्रवृत्ते १५
ततश्च व्यासस्तया सह ४५
तत्तु समन्वयात् २
तत्र दुःखं प्रसिद्धं २३
तथा च वाक्यं ३५
तद्वक्तुं केन शक्यते २९
तदभिप्रायसैवायं.................. ५३
तदुभय-निरोधकरणान्तरं २५
त्यागः प्रपञ्चरूपस्य २५
तुभ्यञ्च नारद! भृशं ३९
तुभ्यञ्चेति चात्................. ३९

द

दृष्ट्वैवं निर्मितं वाक्यं ९१
दैत्यानां नाशनार्थाय ८
दैवकीमग्रहीत् कंस.............. ४७
दैवी सम्पद् विमोक्षाय ८८
द्रष्टृ दर्शन-दृश्यादिभाव २८
द्विजन्मना जैमिनिना................ ८
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्....... ८९

ध

धिषणेन तथा प्रोक्तं ८
ध्वंसस्तु कालचक्रेण ९३

न

न जाग्रन्ने मे स्वप्नको १९
नवरस मिलितं वा ७२
नमो बुद्धाय शुद्धाय............ १४
नाभावो विद्यते सतः ९४
नास्ति यज्ञफलं सदसत्त्वे ८६
नित्योऽहं निरवद्योऽहं............ २८
निद्रामाहात् स्वप्नवत् तन्न..... १९
निन्दसि यज्ञविधेरहह १०
निर्वातेः आत्यन्तिक ३३
निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं............ २४
निरीश्वरेण वादेन कृतं...........८
नैतानि लक्षणानि................ २८
नैव तेन विना.................. २४

प

पत्यभावे कुमारीणां सन्ततिः... ९२
परमानन्द श्रीपादाब्ज-रजः ६३
परात्म-जीवयोरैक्यं................ ९
पराशर-कुलोत्पन्नः शुको ५२
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य.......... ४६
पौलस्त्यं जयते १०

पौषशुक्लस्य सप्तम्यां........... १५
प्रज्ञानं ब्रह्म...................... २६
प्रज्ञानै निरुपाधिक-चैतन्ये २६
प्रज्ञाने नेत्रोलोकः २६
प्रज्ञाने प्रतिष्ठिताम्.............. २६
प्रत्यग् बुद्धत्वमपि मायोपमं.... २१
प्रत्यभावे कुमारीणां ९२
प्रथमं हि मयैवोक्तम् ८
प्रलम्बौ जीव चौरस्तु ४७

ब

बाह्यार्थ-विज्ञान-शून्यवाद ९
बुद्धावतारमाह ततः............. १५
बुद्धो नाम्नाञ्जनसुतः १५
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं............८
ब्रह्मणः सर्वभूतानि २२
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं..............९
ब्रह्मभिन्नत्वाविज्ञानं २५
ब्रह्मण्यमभवद् वराह ११

भ

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः ३,
भस्मीभूतस्य देहस्य ९१
भाववृत्याहि भावत्वं ३०
भो भगवन्! यद्............... १९

म

मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः..............८
मयैव कथितं देवि! कलौ ८
मयैव किथतं देवि! जगतां ८
माञ्च गोपय येन ३१
माध्यमिकास्तावदुत्तमप्रज्ञा २१
मायादेवी सुतश्च............... १२,
मायावादमसच्छास्त्रं ६, ८, ३७
मायामात्रन्तु कात्स्न्र्येनानभिव्यक्तं ..
.... १, ७९
मार्गस्तमेको मोक्षस्य २४
मुक्तिं कैवल्यं निर्वाणं......... ३३
मुनिः पर्यन्तम् अष्टादश बुद्धे ... १२
मुनिन्द्र श्रीघनः.................. १३

य

यत् कारणमभ्यासादिति......... ५४
यत् सत् तत् क्षणिकम्....... २०
यतो वा इमानि.......... ७६, ९६
यद्यपि शुक उत्पत्त्यैव.......... ५३
यन्तेति नेति..................... २९
यस्तां पश्यति भावेन........... २१
यादृशी भावना यस्य ९३
या सर्वज्ञतया २४
ये च सुभूते शून्याः २७
ये तु बौद्धमत.................. ३५
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं........८

र

रज्जुज्ञानात् क्षणेनैव २०

ल

लंकावतार सूत्रं वै १४

व

वदन्ति तत्......................८०
वल्मीकात् वाल्मीकि ४३
वाचो यस्मात्.................... २८
वामस्त्रिरमिव्यक्तिं ४२
वाल्मीकिश्च महायोगी.......... ४३
वास्कलिना च वाहव!.........४०
विचिन्त्य मनसा चहे........... ४५
विमुक्त-सुखम्.................. ३९
विमोहनाय शास्त्राणि ३७

विष्णुभक्त स्मृतो दैवः......... ८९
वेदार्थवन्मटाशास्त्रं ७,
वेदानुद्धरते जगन्ति वहते १०
वेदान्तवेद्यं पुरुषं ९६
वैश्यायां हरिश्चन्द्रो ११
व्यास! त्वदीय तनयः ४५

श

शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुं २७
शक्तिनां परिहारे तु ९१
शंकरः शंकरः साक्षात्......... ३२
शाक्य मुनिस्तु यः १२
शुक-कन्यायं ब्रह्मदत्तम् १२
शून्यमिति देवपुत्रा............... २८
शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि ८
श्रुति-स्मृति-पुराण ६३
श्रुति-स्मृत्यविरुद्धेषु................ ८

ष

षडभिज्ञो दशवलो १२

स

संह्लादं प्रागनुह्लादं................. ४१
सच ब्रह्मदत्तो..................... ५३
स तस्यां प्रितृकन्यायां.......... ५२
समर्थः धनुर्गृहीत्वा शून्य २२
समन्तभद्रो भगवान्............. ११
सम्यक् सम्बुद्धत्वमपि २१
सम्यक् सम्बुद्धोऽपि २१
सर्वकर्म परिभ्रंशात्................ ८
सर्वकारमिदं वदन्ति २४
सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो ११
सर्वत्रत्वृहत्व-गुण-योगेन . ७९, ९६
सर्वथा अपि अनादरणीयः ११
सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा २१
सर्वस्य जगतोऽप्यस्य ९
स शाक्यसिंहः सर्वार्थसिद्धो १२
साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रैः ५४
सा च गर्भवती ४५
सुदुर्बोधासि भायैव............... २१
सूत्रभिप्राय-संवृत्ता ३५
सूत्रमेतन्तिगद्यन्ते १४
सोऽहं ३
स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च ७

ह

हिरण्यकशिपोर्भार्या............... ४१

पयार-सूचि

आचार्येर दोष नाहि ३१
आत्मनिन्दा करि लैल ६९
काशीते पढ़ाय बेटा ६७
कृष्ण बहिर्मुख हइया............ ४,
कृष्ण भूलि सेई जीव ४, ३८
देखि सार्वभौम दण्डवत्......... ६९
निजलोक लइया प्रभु ६७
पृथिवीते आछे यत ७५
प्रकाशानन्द ताँर आसि ६७
प्रभुर कृपाय ताँर............... ६९
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे ... ४३
वशिष्ठादि आइलेन ४३
वेद ना मानिया-बौद्ध ३१
व्यास भ्रान्त बलि ५४

प्रमाण–ग्रन्थ–तालिका

अग्निपुराणम्
अज्ञानबोधिनी (श्रीशंकरकृत)
अद्वैतवाद–दूषणम् (ग्रन्थकारकृत)
अद्वैतमतविमर्षः (सत्यधानतीर्थकृत)
अद्वैतसिद्धिः (मधुसूदन सरस्वतीकृत)
अपरोक्षानुभूतिः (श्रीशंकरकृत)
अमरकोषः (अमरसिंहकृत)
अमरकोषटीका (श्रीरघुनाथ चक्रवर्त्ती–कृत)
अष्टसाहस्रिक प्रज्ञापारमितासूत्र
अर्हत्–दर्शनम्
आत्मपञ्चक (श्रीशंकरकृत)
ईशोपनिषत्
उपनिषत्–भाष्यम् (श्रीबलदेवकृत)
ऐतरेयोपनिषत्
कूर्मपुराणम्
कृष्णकर्णामृतम् (श्रीबिल्वमंगलकृत)
कृष्ण–संहिता (श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकृत)
केवलोऽहम् (श्रीशंकरकृत)
क्रमसन्दर्भः (श्रील जीवगोस्वामिकृत)
गोविन्दभाष्यम् (श्रील बलदेवकृत)
गौड़ीय–भाष्य (श्रील सरस्वती ठाकुरकृत भागवत–विवृति)
चैतन्यचरितामृत
चैतन्यचरितामृत अनुभाष्य (श्रील सरस्वती ठाकुर)
चैतन्यभागवत
जैवधर्म (श्रीलभक्तिविनोदकृत)
तत्त्वकौमुदी (वाचस्पति मिश्रकृत)
तत्त्वप्रकाशिका (जयतीर्थकृत वेदान्तके माध्व भाष्यकी टीका)
तत्त्वमुक्तावली या मायावादशतदूषणी (गौड़पूर्णानन्दकृत)
तरंगिनी (व्यासरामकृत व्यासरायके न्यायामृतकी टीका)
त्रिपुण्ड्र–धिक्कार (सत्यधानतीर्थकृत)
दक्षिणामूर्त्ति–स्तोत्रम् (श्रीशंकरकृत)
दशावतार–स्तोत्रम् (श्रीजयदेवविरचित)
देवी–भागवतम् (अप्रामाणिक)
निर्णय–सिन्धुः
निर्वाण–दशकम् (श्रीशंकरकृत)
नृसिंह तापनी
नृसिंह–पुराणम्
न्यायदर्शनम्
न्यायमत–दूषणम् (ग्रन्थकारकृत)
न्यायसुधा (जयतीर्थकृत)
न्यायामृत (व्यासरायकृत)
पद्मपुराणम् (उत्तरखण्डः)
पारिजात सौरभः (निम्बादित्याचार्यकृत वेदान्त भाष्य)
पाषण्डमत–खण्डनम् (वादिराजतीर्थकृत)
पूर्वमीमांसा–दर्शनम्
प्रज्ञापारमिता सूत्र
प्रेमयरत्नावली (श्रीलबलदेवकृत)
प्रेमविवर्त्त (श्रीलजगदानन्दकृत)
वनमालामिश्रिय (मध्वसम्प्रदाय–प्रकाशित)
वराहपुराणम्
वल्लभ–दिग्विजयः
वाध्व–वास्कलि–कथोपकयन (३/२/१७ ब्रह्मसूत्रके शारीरकभाष्य धृत)
वायुपुराणम्
विवेकचूड़ामणिः (श्रीशंकरकृत)
विष्णुपुराणम्

विष्णुसहस्रनाम-भाष्यम् (श्रील बलदेवकृत)
वेद
वेदान्त–कौस्तुभः (केशवकाश्मीरीकृत)
वेदान्त–वागीशकृत शारीरकभाष्यका हिन्दी अनुवाद (३/२/१७ सूत्र)
वैशेषिकदर्शनम्
ब्रह्मनामावलीमाला (श्रीशंकरकृत)
ब्रह्मवैवर्त्त–पुराणम्
ब्रह्मसूत्र–भाष्यम् (वेदान्तदर्शनम्)
ब्रह्मानन्दीय (ब्रह्मानन्दकृत)
भक्तिरसामृतसिन्धुः
भक्तिरसायन (मधुसूदनसरस्वतीकृत)
भक्तिसिद्धान्तसरस्वती ठाकुरकी वक्तृता
भगवद्गीता
भविष्यपुराणम्
भागवत
भागवत–टीका (श्रीधरस्वामिकृत)
भागवत–टीका (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तिकृत)
भेदोज्जीवनम् (व्यासतीर्थकृत)
मणिमञ्जरी (नारायणाचार्यकृत)
मध्वविजयः (नारायणाचार्यकृत)
माण्डुक्य–कारिका (गौड़पादकृत)
माण्डुक्य–कारिका–भाष्यम् (श्रीशंकरकृत)
मुण्डकोपनिषत्–भाष्यम् (श्रीशंकरकृत)
युक्तिमल्लिका (वादिराजतीर्थकृत)
योगदर्शनम्
योगवाशिष्ठ–रामायणम्
रामचरितमानस (तुलसीदासकृत)
रामायणम् (कीर्त्तिवासकृत)
रामायणम् (वाल्मीकिकृत)
लोकायत–दर्शनम्
लघुभागवतामृतम् (श्रीरूपगोस्वामिकृत)
लंकावतार–सूत्रम्
ललितविस्तारः
लिंगपुराणम्
शंकर–दिग्विजयः
शंकर–विजयः (आनन्दगिरिकृत)
शतसाहस्रिकप्रज्ञापारमितासूत्र
शब्दकल्पद्रुमः (संस्कृत अभिधान)
शब्दार्थ–मञ्जरी–परिशिष्ट (शिवनाथ शिरोमणिकृत)
शाक्त–प्रमोदः
शारीरक भाष्यम्
श्रीमद्भागवतम्
षट्सन्दर्भः (श्रीलजीवगोस्वामिकृत)
सर्वदर्शन–संग्रहः (सायनमाधवकृत)
सर्वसंवादिनी (श्रीलजीवगोस्वामिकृत)
सांख्यकारिका (गौड़पादकृत)
सांख्य–दर्शनम्
सांख्य–दर्शनका भाष्य (विज्ञानभिक्षु विरचित)
सांख्यमत–दूषणम् (ग्रन्थकारकृत)
सारंगरंगदाटीका (श्रील बलदेवकृत)
सिद्धान्त–रत्नमाला (ग्रन्थकारकृत)
सुधा–टिप्पनी (वादिराजतीर्थकृत)
सुन्दरानन्द–चरितम्
सुबोधिनी (श्रीधरस्वामिकृत गीताकी टीका)
स्कन्दपुराणम्
हरिवंशः
हरिभक्तिविलासः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा हिन्दी तथा अँग्रेजीमें प्रकाशित शुद्धभक्ति–ग्रन्थ तालिका

(१) श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कृत सारार्थवर्षिणी टीका) (२) श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कृत रसिक–रञ्जन भाष्य) (३) जैव–धर्म (जीवका धर्म) (४) श्रीभागवतामृतकणा (५) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु–बिन्दु (६) श्रीउज्ज्वलनीलमणि–किरण (७) श्रीरागवर्त्म–चन्द्रिका (८) श्रीमाधुर्यकादम्बिनी (९) श्रीउपदेशामृत (१०) श्रीमनःशिक्षा (११) श्रीशिक्षाष्टक (१२) श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा (१३) श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं–भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण (१४) अर्चन दीपिका (१५) श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा एवं श्रीगौड़मण्डलके प्रमुख गौड़ीय–वैष्णव–तीर्थसमूह (१६) श्रीभक्तितत्त्व–विवेक (१७) श्रीगौड़ीय गीति गुच्छ (१८) श्रीवैष्णव–सिद्धान्त–माला (१९) श्रीगौड़ीय कण्ठहार (२०) श्रीचैतन्य–शिक्षामृत (२१) सत्क्रियासार–दीपिका (२२) महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा–आश्रम (२३) श्रीभागवत–पत्रिका (मासिक)

(1) Shri Chaitaya Mahaprabhu (His life & Precepts) (2) The Vedanta (Its Morphology & Ontology) (3) Vaishnavism (Real & Apparent) (4) Rai Ramanand (5) Nam Bhajan (6) The Bhagavat (Its Philosophy, Theology & Ethics) (7) The Nectar of Govind-Līlā (8) Going Beyond Vaikunṭḥa (9) Bhakti-Rasāyan (10) Shri Śikṣāṣṭaka (11) Venu-Gīta (12) Manaḥ-Śikṣā (13) Bhakti Rasāmṛta Sindhu Bindu (14) Life History of Impersonalism (Victory of Vaishnavism) (15) Prabandhāvalī